नाथ-संप्रदाय

हजारीप्रसाद द्विवेदी

१९५०

हिंदुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद

स्वर्गीय गुरुदेव को

निवेदन

भारतीय धर्मसाधना के इतिहास में नाथसंप्रदाय बहुत महत्त्वपूर्ण संप्रदाय रहा है पर उसके बारे में पुस्तक लिखना बड़ा कठिन कार्य है। वह अब तक एक प्रकार से उपेक्षित ही रहा है। इस पुस्तक के सहृदय पाठक लेखक की कठिनाइयों को आसानी से समझ सकते हैं। अनेक बाधाओं और कठिनाइयों के होते हुए भी पुस्तक जो लिखी जा सकी है वह उन विद्वानों के परिश्रमपूर्वक किए गए अध्ययनों के बल पर ही संभव हुआ है जिन्होंने इस विषय से संबद्ध नाना क्षेत्रों में कार्य किया है। लेखक उन सभी विद्वानों के प्रति अपनी आंतरिक कृतज्ञता प्रकट करता है।

डा० धीरेंद्र वर्मा जी की प्रेरणा से ही पुस्तक लिखी गई है। उन्होंने इसके लिये अनेक प्रकार के उपयोगी सुझाव देकर इसे सर्वाङ्गपूर्ण बनाने में अमूल्य सहायता पहुँचाई है। अंत में उन्होंने ही इस पुस्तक की भूमिका लिख कर इसका गौरव बढ़ाया है। लेखक किन शब्दों में उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करे?

मेरे अत्यंत प्रिय सुहृद् श्रीरामसिंह जी तोमर ने बड़े परिश्रम से पुस्तक का प्रूफ़ देखा है और इसे अधिक त्रुटियुक्त होने से बचा लिया है। इस अवसर पर उनकी इस तत्परता के स्मरण से लेखक को आंतरिक प्रीति और आनंद का अनुभव हो रहा है।

हिंदुस्तानी एकेडेमी के प्रति भी लेखक अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है। इस संस्था की कृपा के फलस्वरूप ही इस विषय के अध्ययन का अवसर मिला है।

सहृदय पाठकों की उदार दृष्टि के भरोसे ही पुस्तक प्रकाशित करने का साहस हुआ है।

शांतिनिकेतन
१६-१-५०

हजारीप्रसाद द्विवेदी

वक्तव्य

हिंदी साहित्य के इतिहास में सिद्ध-साहित्य के महत्त्व की ओर ध्यान पहले पहल डा० पीताम्बरदत्त बर्थ्वाल ने आकृष्ट किया था, मागधी अपभ्रंश में लिखी हुई सिद्ध-साहित्य संबंधी प्रचुर सामग्री को श्री राहुल सांकृत्यायन प्रकाश में लाए और अब प्रसिद्ध विद्वान् डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सिद्ध या नाथ-संप्रदाय का यह क्रमबद्ध प्रथम विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत ग्रंथ के रूप में उपस्थित किया है।

इस ग्रंथ के तैयार करने में डा० द्विवेदी ने सिद्ध-संप्रदाय से संबंध रखने वाली समस्त सामग्री का अत्यंत योग्यता के साथ उपयोग किया है। यह सामग्री संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश ग्रंथों, संप्रदाय में सुरक्षित जनश्रुतियों तथा अंग्रेज़ी आदि अन्य आधुनिक भाषा के ग्रंथों में संकलित उल्लेखों के रूप में बिखरी पड़ी थी। इन सबके अध्ययन तथा समन्वय के फल-स्वरूप संप्रदाय के इतिहास तथा सिद्धांतों की स्पष्ट रूपरेखा उपस्थित करना सरल कार्य नहीं था। अलौकिक कथाओं तथा असंबद्ध जनश्रुतियों में से ऐतिहासिक तथ्य को टटोल कर निकाल लेना डा० द्विवेदी जैसे अनुभवी, बहुश्रुत तथा प्रतिभाशाली विद्वान के लिए ही संभव था।

ग्रंथकार ने पहले दो अध्यायों में नाथ-संप्रदाय तथा संप्रदाय के पुराने सिद्धों का वर्णनात्मक परिचय दिया है, किंतु इस परिचय में भी प्रचुर मौलिक खोज संबंधी सामग्री गुथी हुई है। अगले तीन अध्यायों में मत्स्येंद्रनाथ और उनके कौलज्ञान का विवेचन है। छठें व सातवें अध्यायों में जालंधरनाथ और कृष्णपाद तथा उनके कापालिक मत का वर्णन है। इसके उपरांत चार अध्यायों (८—१२) का विषय गोरखनाथ तथा उनके योगमार्ग के सिद्धांत हैं। बारहवें तथा तेरहवें अध्यायों में गोरखनाथ के समसामयिक सिद्धों और परवर्ती सिद्ध-संप्रदायों का विस्तृत परिचय है। अंतिम दो अध्यायों में लोकभाषा में संप्रदाय के नैतिक उपदेशों का सार तथा उपसंहार है। इस तरह इन दो सौ पृष्ठों में सिद्ध या नाथ संप्रदाय का प्रामाणिक इतिहास तथा उसके सिद्धांतों का परिचय पाठक को एकत्र मिल जाता है।

स्वर्गीय राय राजेश्वर बली की प्रेरणा से इस विषय पर पुस्तक लिखाने के लिए खजूरगाँव राज (रायबरेली) के ताल्लुक़ेदार राना उमानाथ बख़्श सिंह साहब ने १२००) का पुरस्कार देने का वचन दिया था, जिसमें ६००) उन्होंने एकेडेमी में भिजवा भी दिया था। राना साहब को इस विषय से विशेष दिलचस्पी थी और पुस्तक की हस्तलिपि को आद्योपांत पढ़कर उन्होंने कुछ सुझाव भी योग्य लेखक के पास भिजवाए थे। यह अत्यंत दुःख का विषय है कि आज जब यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है तो ये दोनों ही सज्जन हम लोगों के बीच में नहीं हैं। जो हो एकेडेमी इन दोनों का आभारी है क्योंकि इनकी प्रेरणा और सहायता के बिना कदाचित् इस ग्रंथ का अभी लिखा जाना संभव न होता।

धीरेन्द्र वर्मा

२५ जनवरी, १९५०

कृतज्ञता-प्रकाश

इस पुस्तक के प्रकाशित होते होते हमें खजुरगाँव के स्वर्गीय राना उमानाथ बख्श सिंह के सुपुत्र राना शिवंबर सिंह साहब से ५००) की रक़म प्रकाशन में सहायता के रूप में प्राप्त हुई है। स्वर्गीय राना साहब से प्राप्त सहायता का उल्लेख वक्तव्य में हो चुका है। राना शिवंबर सिंह साहब ने इस दान द्वारा अपने सुयोग्य पिता के वचन की अधिकांश पूर्ति की है और अपने वंश की विद्यानुरागिता का परिचय दिया है। हम हृदय से उनके कृतज्ञ हैं।

मंत्री तथा कोषाध्यक्ष,
हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

३१-३-५०

विषय-सूची

१

नाथ-संप्रदाय का विस्तार

(१) नाम

सांप्रदायिक ग्रंथों में नाथ-संप्रदाय के अनेक नामों का उल्लेख मिलता है। ह ठ यो ग प्र दी पि का की टीका (१-५) में ब्रह्मानंद ने लिखा है कि सब नाथों में प्रथम आदिनाथ हैं जो स्वयं शिव ही हैं—ऐसा नाथ-संप्रदाय वालों का विश्वास है। इस से यह अनुमान किया जा सकता है कि ब्रह्मानंद इस संप्रदाय को 'नाथ-संप्रदाय' नाम से ही जानते थे [१] भिन्न-भिन्न ग्रंथों में बराबर यह उल्लेख मिलता है कि यह मत 'नाथोक्त' अर्थात् नाथद्वारा कथित है। परंतु संप्रदाय में अधिक प्रचलित शब्द हैं, सिद्ध-मत (गो० सि०सं०, पृ० १२) सिद्ध-मार्ग(योगबीज), योग-मार्ग (गो०सि० सं०, पृ० ५, २१)योग-संप्रदाय-(गो० सि० सं०, पृ० ५८), अवधूतमत (पृ० १८), अवधूत-संप्रदाय (पृ० ५६) इत्यादि। इस मत के योग मत और योग-संप्रदाय नाम तो सार्थक ही हैं, क्योंकि इनका मुख्य धर्म ही योगाभ्यास है। अपने मार्ग को ये लोग सिद्धमत या सिद्ध-मार्ग इसलिये कहते हैं कि इनके मत से नाथ ही सिद्ध हैं। इनके मत का अत्यंत प्रामाणिक ग्रंथ 'सि द्ध सि द्धा न्त-प द्ध ति' है जिसे अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में काशी के बलभद्र पंडित ने संक्षिप्त कर के सि द्ध-सि द्धा न्त-सं ग्र ह नामक ग्रंथ लिखा था। इन ग्रंथों के नाम से पता चलता है कि बहुत प्राचीन काल से इस मत को 'सिद्ध मत' कहा जा रहा है। सिद्धान्त वस्तुतः वादी और प्रतिवादी द्वारा निर्णीत अर्थ को कहते हैं, परन्तु इस संप्रदाय में यह अर्थ नहीं स्वीकार किया जाता। इन लोगों के मत से सिद्धों द्वारा निर्णीत या व्याख्यात तत्त्व को ही सिद्धान्त कहा जाता है (गो० सि० सं०, पृ० १८), इसी लिये अपने संप्रदाय के ग्रंथों को ही ये लोग 'सिद्धान्त-ग्रंथ' कहते हैं। नाथ संप्रदाय में प्रसिद्ध है कि शं क रा चा र्य अन्त में नाथ-संप्रदाय के अनुयायी हो गए और उसी अवस्था में उन्होंने सि द्धा न्त-विं दु ग्रंथ लिखा था। अपने मत को ये लोग 'अवधूत मत' भी कहते हैं। गो र क्ष-सि द्धा न्त-सं ग्र ह में लिखा है कि हमारा मत तो अवधूत मत ही है (अस्माकं मतं त्वव-धूतमेव, पृ० १८)। कबीरदास ने 'अवधू' (=अवधूत) को संबोधन करते समय इस मत को ही बराबर ध्यान में रखा है। कभी कभी इस मत के ढोंगी साधुओं को उन्होंने 'कच्चे सिद्ध' कहा है [२]। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रा म च रि त मा न स के शुरू में ही

---

१. आदिनाथः सर्वेषां नाथानां प्रथमः, ततो नाथसंप्रदायः प्रवृत्त इति नाथसंप्रदायिनो वदन्ति।

२. कच्चे सिद्धन माया प्यारी। —बी ज क, ६९ वीं रमैनी

'सिद्ध मत' की भक्ति-हीनता [१] की ओर इशारा किया है। गोस्वामी जी के ग्रंथों से पता चलता है कि वे यह विश्वास करते थे कि गोरखनाथ ने योग जगाकर भक्ति को दूर कर दिया था [२]। मेरा अनुमान है कि रामचरितमानस के आरंभ में शिव की वंदना के प्रसंग में जब उन्होंने कहा था कि 'श्रद्धा और विश्वास के साक्षात् स्वरूप पार्वती और शिव हैं; इन्हीं दो गुणों (अर्थात् श्रद्धा और विश्वास) के अभाव में 'सिद्ध' लोग भी अपने ही भीतर विद्यमान ईश्वर को नहीं देख पाते'[३], तो उनका तात्पर्य इन्हीं नाथपंथियों से था। यह अनुमान यदि ठीक है तो यह भी सिद्ध है कि गोस्वामी जी इस मत को 'सिद्ध मत' ही कहते थे। यह नाम संप्रदाय में भी बहुत समादृत है और इसकी परंपरा बहुत पुरानी मालूम होती है। मत्स्येन्द्रनाथ के कौलज्ञाननिर्णय के सोलहवें पटल से अनुमान होता है कि वे जिस संप्रदाय के अनुयायी थे उसका नाम 'सिद्ध कौल संप्रदाय' था। डा० बागची ने लिखा है कि बाद में उन्होंने जिस संप्रदाय का प्रवर्तन किया था उसका नाम 'योगिनी कौल मार्ग' था। आगे चल कर इस बात की विशेष आलोचना करने का अवसर आएगा। यहाँ इतना ही कह रखना पर्याप्त है कि यह सिद्ध कौल मत ही आगे चल कर नाथ-परंपरा के रूप में विकसित हुआ।

सिद्धसिद्धान्तपद्धति में इस सिद्ध मत को सबसे श्रेष्ठ बताया गया है, क्योंकि कर्कशतर्कपरायण वेदान्ती माया से ग्रसित हैं, भाट्ट मीमांसक कर्म-फल के चक्कर में पड़े हुए हैं, वैशेषिक लोग अपनी द्वैत बुद्धि से ही मारे गए हैं तथा अन्यान्य दार्शनिक भी तत्त्व से वंचित ही हैं; फिर, सांख्य, वैष्णव, वैदिक, वीर, बौद्ध, जैन, ये सब लोग व्यर्थ के कष्टकल्पित मार्ग में भटक रहे हैं; फिर, होम करने वाले

---

१. (१) लियोनार्ड ने अपने नोट्स आन दि कनफटा योगीज़ नामक प्रबंध में दिखाया है कि गोरखनाथ भक्ति मार्ग के प्रतिद्वंदी थे। देखिए इ० एं०, जिल्द ७, पृ० २९६।

(२) नाथयोगियों और भक्तों की तुलना के लिये देखिए—कबीर, पृ० १५३-४।

२. बरन धरम गयो आस्रम निवास तज्यो
त्रासन चकित सो परावनो परो सो है।
करम उपासना कुवासना विनास्यो ज्ञान
वचन विराग वेस जतन हरो सो है।
गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग
निगम नियोग ते सो केलि ही छरो सो है।
काय मनः बचन सुभाय तुलसी है जाहि
राम नाम को भरोसो ताहिको भरोसो है।
—कवितावली, उत्तरकाण्ड, ८४।

३. भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥

बहु दीक्षित आचार्य, नग्नव्रत वाले तापस, नाना तीर्थों में भटकने वाले पुण्यार्थी बेचारे दुःखभार से दबे रहने के कारण तत्त्व से शून्य रह गए हैं, —इसलिये एक मात्र स्वाभाविक आचरण के अनुकूल सिद्ध-मार्ग को आश्रय करना ही उपयुक्त है[१]। यह सिद्ध-मार्ग नाथ मत ही है। 'ना' का अर्थ है अनादि रूप और 'थ' का अर्थ है (भुवनत्रय का) स्थापित होना, इस प्रकार 'नाथ' मत का स्पष्टार्थ वह अनादि धर्म है जो भुवनत्रय की स्थिति का कारण है। श्री गोरक्ष को इसी कारण से 'नाथ' कहा जाता है।[२] फिर 'ना' शब्द का अर्थ नाथ-ब्रह्म जो मोक्ष-दान में दक्ष हैं, उनका ज्ञान कराना है और थ' का अर्थ है (अज्ञान के सामर्थ्य को) स्थगित करने वाला। चूँकि नाथ के आश्रयण से इस नाथ-ब्रह्म का साक्षात्कार होता है और अज्ञान की माया अवरुद्ध होती है इसीलिये 'नाथ' शब्द का व्यवहार किया जाता है।[३]

(२) बौद्ध और शाक्त मतों का अन्तर्भाव

यह विश्वास किया जाता है कि आदिनाथ स्वयं शिव ही हैं[४] और मूलतः समग्र नाथ-संप्रदाय शैव है। सब के मूल उपास्य देवता शिव हैं। गोरक्ष सिद्धान्त

---

१. वेदान्ती बहुतर्ककर्कशमतिर्ग्रस्तः परं मायया ।
भाट्टाः कर्मफलाकुला हतधियो द्वैतेन वैशेपिकाः ।
अन्ये भेदरता विषादविकलास्ते तत्त्वतोवंचिता—
स्तस्मात् सिद्धमतं स्वभावसमयं धीरःपरं संश्रयेत् ।
सांख्या वैष्णव वैदिका विधिपराः संन्यासिनस्तापसाः ।
सौरा वीरपरा प्रपञ्चनिरता बौद्धा जिनाः श्रावकाः ।
एते कष्टरता वृथा पृथगताःते तत्त्वतोवञ्चिता —
स्तस्मात् सिद्धमतं० ।
आचार्या बहुदीक्षिता हुतिरता नग्नव्रतास्तापसाः ।
नानातीर्थनिषेवका जिनपरा मौने स्थिता नित्यशः ।
एते ते खलु दु खभागनिरता ते तत्त्वतो वञ्चिता —
स्तस्मात् सिद्धमतं० ।

२. राजगुह्य में—नाकारोऽनादि रूपं थकारः स्थाप्यते सदा ।
भुवनत्रयमेवैकः श्री गोरक्ष नमोऽस्तुते ॥

३. शक्तिसंगम तंत्र में—श्री मोक्षदानदक्षत्वात् नाथ ब्रह्मानुबोधनात् ।
स्थगिताज्ञान विभवात् श्री नाथ इति गीयते ॥

४. देदीप्यमानस्तत्त्वस्य कर्ता साक्षात् स्वयं शिवः
संरक्षन्तो विश्वमेव धीराः सिद्धमताश्रयाः ॥ —सिद्ध सिद्धान्त पद्धति

शक्तिसंगम तंत्र बड़ौदा सीरीज़ (६१) के ताराखण्ड में आदिनाथ और काली के संवाद से ग्रंथ आरंभ होता है। ये आदिनाथ स्वयं शिव ही हैं।

संग्रह (पृ० १८) में शंकराचार्य के अद्वैत मत के पराभव की कहानी दी हुई है। पराभव एक कापालिक द्वारा हुआ था। कहानी कहने के बाद ग्रंथकार को संदेह हुआ है कि पाठक कहीं कापालिक के विजय से उल्लसित होने के कारण ग्रंथकार को भी उसी मत का अनुयायी न मान लें, इसलिये उन्होंने इस शंका को निर्मूल करने के लिये कहा है कि ऐसा कोई न समझे कि हम कापालिक मत को मानते हैं। मत तो हमारा अवधूत ही है। किन्तु इतना अवश्य है कि कापालिक मत को भी श्री 'नाथ' ने ही प्रकट किया था, क्योंकि शाबर तंत्र में कापालिकों के बारह आचार्यों में प्रथम नाम आदिनाथ का ही है और बारह शिष्यों में से कई नाथ मार्ग के प्रधान आचार्य हैं[१]। फिर शाक्त मार्ग, जो तंत्रानुसारी है, उसके उपदेष्टा भी नाथ ही हैं। नाथ ने ही तंत्रों की रचना की है क्योंकि षोडश नित्या तंत्र में शिव ने कहा है कि मेरे कहे हुए तंत्र को ही नवनाथों ने लोक में प्रचार किया है[२]। शाक्त मत के अनुसार चार प्रधान आचार हैं:—वैदिक, वैष्णव, शैव और शाक्त। शाक्त आचार भी चार प्रकार के हैं:—वामाचार, दक्षिणाचार, सिद्धान्ताचार और कौलाचार। अब, षट्शांभव-रहस्य नामक ग्रंथ में बताया गया है कि वैदिक आचार से वैष्णव श्रेष्ठ हैं, उससे गाणपत्य, उससे सौर, उससे शैव और शैव आचार से भी शाक्त आचार श्रेष्ठ है। शाक्त आचारों में भी वाम, दक्षिण और कौल उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं और कौल मार्ग ही अवधूत-मार्ग है। इस प्रकार तंत्र ग्रंथों के अनुसार भी कौल या अवधूत मार्ग श्रेष्ठ है, इसलिये शाक्त तंत्र भी नाथानुयायी ही हैं (गो० सि० सं०, पृ० १९)। यह लक्ष्य करने की बात है कि इस वक्तव्य में शाक्त तंत्र को ही नाथ मत का अनुयायी कहा गया है। शाक्त आगम तीन प्रकार के हैं। सात्त्विक अधिकारियों को लक्ष्य करके उपदिष्ट आगम 'तंत्र' कहे जाते हैं, राजस अधिकारियों के लिये उपदिष्ट शास्त्र 'यामल' कहे जाते हैं और तामस अधिकारियों के लिये उपदिष्ट शास्त्र को 'डामर' कहा जाता है। फिर तांत्रिकों के सर्वश्रेष्ठ कौलाचार को ही-अवधूत-मार्ग बताया गया है। गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह (पृ० २८) में तांत्रिक और अवधूत का अन्तर भी बताया गया है। कहा गया है कि तांत्रिक लोग पहिले बहिरंग उपासना करते हैं और अन्त में क्रमशः सिद्धि प्राप्त करते हुए कुण्डलिनी शक्ति की उपासना करते हैं जो हू-ब-हू अवधूत-मार्ग की ही उपासना है।

---

१. कापालिकों के बारह आचार्य ये हैं—आदिनाथ, अनादि, काल, अतिकाल, कराल, विकराल, महाकाल कालभैरवनाथ, बटुकनाथ, वीरनाथ और श्रीकण्ठ। इनके बारह शिष्यों के नाम इस प्रकार हैं—नागार्जुन, जड़भरत, हरिश्चंद्र, सत्यनाथ, भीमनाथ, गोरक्ष, चर्पट, अवद्य; वैरागी, कंथाधारी, जालंधर और मलयार्जुन। स्पष्ट ही इस सूची में के अनेक नाम नाथ-योगियों के हैं।

२. कादिसंज्ञा भवेद्भूपा साराक्तिः सर्व सिद्धये।
तंत्र यदुक्तं भुवने नवनाथैरकल्पयन्॥
तथा तैर्भुवने मंत्रं कल्पे-कल्पे विजृम्भते।
मवमाने तु कल्पानां मा तैः सार्द्धं व्रजेच माम्॥

इस प्रकार नाथ संप्रदाय के ग्रंथों की अपनी गवाही से ही मालूम होता है कि तांत्रिकों का कौल-मार्ग और कापालिक मत नाथ मतानुयायी ही हैं। यहां यह ध्यान देने की बात है कि *कौलज्ञाननिर्णय* में अनेक कौल मतों में एक योगिनी-कौल मत का उल्लेख है (सप्तदश पटल)। गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ का संबंध इसी योगिनी-कौल मार्ग से बताया गया है[१]। यह मार्ग कामरूप देश में उद्भूत हुआ था। इस प्रकार नाथ-पंथियों का यह दावा ठीक ही जान पड़ता है कि कौलाचार उनके आचार्यों द्वारा उपदिष्ट मार्ग है। त्रिपुरा-संप्रदाय के अनेक सिद्धों के नाम वे ही हैं जो नाथ पंथियों के हैं। प्रसिद्ध है कि दत्तात्रेय ने त्रिपुरातत्त्व पर अठारह हजार श्लोकों की *दत्तसंहिता* लिखी थी। परशुराम नामक किसी आचार्य ने पचास खंडों में तथा छः हजार सूत्रों में इसे संक्षिप्त किया था। बाद में यह संक्षिप्त ग्रंथ भी बड़ा समझा गया और हरितायन सुमेधा ने इसे *परशुरामकल्पसूत्र* नाम से पुनर्वार संक्षिप्त किया। इस ग्रंथ की दो टीकाएँ उपलब्ध हुई हैं और दोनों ही गायकवाड़ संस्कृत सीरीज में (नं० २२, २३) प्रकाशित हो गई हैं। प्रथम टीका उमानंद-नाथ की लिखी हुई *नित्योत्सव* नामक है। इसे अशुद्ध समझ कर रामेश्वर ने दूसरी वृत्ति लिखी। उमानन्दनाथ ने प्रथम मंगलाचरण के श्लोक में 'नाथपरम्परा' की स्तुति की है[२]। इस प्रकार त्रिपुरा मत के तांत्रिकों के आचार्य स्वयं अपने को 'नाथ मतानुयायी' कहते हैं। काश्मीर के कौल मार्ग में मत्स्येंद्रनाथ को बड़ी श्रद्धा के साथ स्मरण किया जाता है।

अब थोड़ा सा कापालिक मत के विषय में भी विचार किया जाय। कापालिक मत इस समय जीवित है या नहीं, इस विषय में संदेह ही प्रकट किया जाता है[३]। यामुनाचार्य के *आगमप्रामाण्य* (पृ० ४८) से इस मत का थोड़ा सा परिचय मिलता है। भवभूति के *मालतीमाधव* नामक प्रकरण में कापालिकों का जो वर्णन है वह बहुत ही भयंकर है। वे लोग मनुष्य-बलि किया करते थे। परन्तु इस नाटक से इतना तो स्पष्ट ही है कि उनका मत षट्चक्र और नाड़िका-निचय के काया-योग से संबद्ध

---

१. बागची : *कौलावलिनिर्णय*, भूमिका पृ० ३५

उपाध्याय : *भारतीय दर्शन*, पृ० ५३८

२. नत्वा नाथ परंपरां शिवमुखां विश्वेश्वरं श्री महा-

राज्ञीं तत्सचिवां तदीयपृतनानाथां तदन्तःपराम् — इत्यादि।

३. बंगाल में कपाली नाम की एक जाति है। पंडित लोग इसे कापालिक परंपरा का अवशेष मानते हैं; परन्तु स्वयं यह जाति इस बात को नहीं स्वीकार करती। ये लोग अपनेको वैश्य कपाली कहने लगे हैं। इनके समस्त आचार आधुनिक हिंदुओं के हैं। इनके पुरोहित ब्राह्मण हैं परन्तु अन्य ब्राह्मण इन्हें हीन समझते हैं। सन् १९०१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार इनकी संख्या १४,७०० थी।

था[1]। यह काया-योग नाथपंथियों की अपनी विशेषता है। महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री ने बौद्ध गान ओ दोहा नाम से जो संग्रह प्रकाशित किया है उसका एक भाग चर्याचर्यविनिश्चय है। यहाँ सुझाया गया है कि ग्रंथ का वास्तविक नाम चर्याश्चर्यविनिश्चय होना चाहिए। इस में चौरासी बौद्ध सिद्धों में से चौबीस सिद्धों के रचित पद संगृहीत हैं। एक सिद्ध हैं कान्हूपाद या कृष्णपाद। इनके रचित बारह पद उक्त संग्रह में पाए जाते हैं और सब से अधिक पद इन्हीं के हैं। ये कान्हूपाद अपने को 'कापाली' या 'कापालिक' कहते हैं।[2] एक पद में उन्होंने अपने गुरु का नाम जालंधरि दिया है।[3] हम आगे चल कर देखेंगे कि जालंधरपाद नाथपंथ के बहुत प्रसिद्ध आचार्य थे। परवर्ती परंपरा के अनुसार भी कान्हूपाद या कानपा जालंधरनाथ के शिष्य बताए गए हैं। मानिकचंद्र के मयनामतीर गान में इन्हें नाथपंथी योगी जालंधर का शिष्य बताया है। इन्हीं जालंधर का नाम हाड़ीपा या हलीकपाद भी है। जालंधरनाथ ने कोई सिद्धान्तवाक्य नामक संस्कृत पुस्तक भी लिखी थी। वह पुस्तक अब उपलब्ध नहीं है, पर एक श्लोक से पता चलता है कि जालंधर नाथ-मार्ग के अनुयायी थे। उस श्लोक में नाथ की बड़ी सुंदर स्तुति है[4]। स्कंदपुराण के काशीखण्ड में नव नाथों के विन्यास के सिलसिले में जालंधरनाथ का नाम

---

१. नित्यंन्यस्तपडङ्गचक्रनिहितं हृत्पद्ममध्योदितं
   पश्यन्ती शिवरूपिणं लयवशादात्मानमभ्यागता।
   नाड़ीनामुदयक्रमेण जगः पंचामृताकर्षणाद्
   अप्राप्तोत्पतनश्रमा विघटयन्त्यग्र नभोऽभोमुचः॥ —मालतीमाधव ५-२

२ (१) आलो डोम्बि तोए संग करिब मो सांग।
   निर्धन कान्ह कापालि जोइलांग॥ चर्या०, पद १०
   (२) कइसन होलो डोम्बि तोहरि भाभरि आली।
   अन्ते कुलीन जन माझे कावाली।
   (३) तुलो डोम्बी हाउँ कपाली —वही, पद १०

३. शाखि करिब जालंधरि पाए।
   पाखि ण राहअ मोरि पांडिआ चादे॥ —वही, पद ३६

४ जालंधर के सिद्धान्तवाक्य में यह श्लोक है:
   वन्दे तन्नाथतेजो भुवनतिमिरहं भानुतेजस्करं वा
   सत्कर्तृ व्यापकं त्वा पवनगतिकरं व्योमवन्निर्भरं वा
   मुद्रानादत्रिशूलैर्विमलरुचिधरं खर्परं भस्ममिश्रं
   द्वैतं वाऽद्वैतरूपं द्वयत उत परं योगिनं शङ्करं वा —स०, भ०, सू०, पृ० १८

पाया जाता है[1]। गोरक्ष सिद्धांत संग्रह (पृ० २०) पर कापालिक मत के प्रकट करने का मनोरंजक कारण बताया गया है। जब विष्णु ने चौबीस अवतार धारण किए और मत्स्य, कूर्म, नृसिंह आदि के रूप में तिर्यग् योनि के जीवों की सी क्रीड़ा करने लगे, कृष्ण के रूप में व्यभिचारि भाव ग्रहण किया, परशुराम के रूप में निरपराध क्षत्रियों का निपात आरम्भ किया, तो इन अनर्थों से कुपित होकर श्रीनाथ ने चौबिस कापालिकों को भेजा। इन्होंने चौबीसों अवतारों से युद्ध करके उनका सिर या कपाल काटकर धारण किया! इसीलिये ये लोग कापालिक कहलाए।

इस समय जयपुर के पावनाथ शाखा वाले अपनी परम्परा जालंधरनाथ और गोपीचन्द से मिलाते हैं। अनुश्रुति के अनुसार बारह पंथों में से छः स्वयं शिव के प्रवर्तित हैं और बाकी छः गोरखनाथ के। यह परम्परा लक्ष्य करने की है कि जालंधरिपा नामक जो संप्रदाय इस समय जीवित है वह जालंधरपाद का चलाया हुआ है। पहले इसे 'पा पंथ' कहते थे और नाथ-मार्ग से ये लोग स्वतंत्र और भिन्न थे। जालंधर या जालंधर नाथ को मत्स्येंद्रनाथ और गोरखनाथ से अलग करने के लिये कहा गया है। जालंधरनाथ औघड़ थे जब कि मत्स्येंद्रनाथ और गोरखनाथ कनफटा।[2] कान चीर कर मुद्रा धारण करने पर योगी लोग कनफटा कहलाते हैं परन्तु उसके पूर्व औघड़ कहे जाते हैं। परन्तु सिद्धान्त वाक्य से जालंधरपाद का जो श्लोक पहले उद्धृत किया गया है उससे पता चलता है कि मुद्रा, नाद और त्रिशूल धारण करने वाले नाथ ही इनके उपास्य हैं। आजकल जालंधरिपा सम्प्रदाय के लोग गोरखनाथ द्वारा प्रवर्तित पावनाथी शाखा के ही हैं। परन्तु कानिपा सम्प्रदाय वाले, जिन्हें कोई-कोई जालन्धरिपा से अभिन्न भी मानते हैं और जो लोग अपने को गोपीचन्द का अनुवर्ती मानते हैं, बारह पंथियों से अलग समझे जाते हैं।[3] सपेला या सँपेरे इसी सम्प्रदाय के माने जाते हैं। एक अन्य परंपरा के अनुसार बामारग (वाममार्ग) संप्रदाय कानिपा पंथ से ही संबद्ध है।[3] इन बातों से यह अनुमान होता है कि कापालिक मार्ग का स्वतंत्र अस्तित्व था जो बाद में गोरखपंथी साधुओं में अन्तर्भुक्त हो गया है। गोरखपंथियों से कुछ बातों में ये लोग अब भी भिन्न हैं। गोरखपंथी लोग कान के मध्यभाग में ही कुण्डल धारण करते हैं पर कानिपा लोग कान की लोरों में भी उसे पहनते हैं। यह मुद्रा गोरखनाथी योगियों का चिह्न है गोरक्षपंथ में इसके अनेक आध्यात्मिक अर्थ भी बताये जाते हैं। कहते हैं यह शब्द मुद् (प्रसन्न होना) और रा (आदान, ग्रहण) इन धातुओं से बना है। ये दोनों जीवात्मा और परमात्मा के प्रतीक हैं। चूँकि इससे देवता लोग प्रसन्न होते हैं और असुर

---

१. जालंधरो वसेन्नित्यमुत्तरापथमाश्रित.।

२. ब्रिग्स : गोरखनाथ ऐण्ड दि कनफटा योगीज़, पृ० ६७।

३ वही, पृ० ६१।

लोग भाग खड़े होते हैं इसलिये इसे साक्षात्कल्याणदायिनी मुद्रा माना जाता है[1]। मुद्रा धारण के लिये कान का फाड़ना आवश्यक है और यह कार्य छुरी या छुरिका से ही होता है। इसीलिये छुरिकोपनिषद् में छुरी का माहात्म्य वर्णित है[2]। तात्पर्य यह कि जो साधु कान फाड़कर मुद्रा धारण नहीं करते उनका गोरक्षनाथ के मार्ग से संबंध संदेहास्पद हो है। इस आलोचना से स्पष्ट होता है कि जालंधर (वा जलंधर) पाद और कृष्ण-पाद (कानिपा, कानुपा, कान्हूपा) द्वारा प्रवर्तित मत नाथ-संप्रदाय के अन्तर्गत तो था परन्तु मत्स्येंद्रनाथ-गोरखनाथ परम्परा से भिन्न था। बाद में चलकर वह गोरखनाथी शाखा में अन्तर्भुक्त हुआ होगा।

जो हो, जालंधरपाद और कृष्णपाद कर्णकुण्डल धारण करते थे, या नहीं यह निश्चय करना आज के वर्तमान उपलभ्य सामग्रियों के आधार बहुत कठिन है। परन्तु चर्यापद में शबरपाद का एक पद हमें ऐसा मिला है[3] जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि कम से कम शबरपाद या तो स्वयं कर्णकुण्डल धारण करते थे या फिर उनके सामने ऐसे योगी जरूर थे जो कर्णकुण्डल धारण करते थे : पहली बात ज्यादा मान्य जान पड़ती है। इन शबरपाद को कृष्णपाद (कानपा) ने बहुत श्रद्धा और सम्मान के साथ याद किया है और एक दोहे में परम पद—महासुख के आवास—के प्रसंग में बताया है कि यही वह जालधर नामक महामेरु गिरि के शिखर का उष्णीष कमल है—जो साधकों का चरम प्राप्तव्य है—जहाँ स्वयं शबरपाद ने वास किया था।[4] यदि यह अनुमान सत्य हो कि शबर पादकिसी

---

१. मुद् मोदे तु रादाने जीवात्मपरमात्मनोः।
उभयोरैक्यसंभूतिर्मुद्रेति परिकीर्तिता॥
मोदन्ते देवसंघाश्च द्रवन्तेऽसुरराशयः।
मुद्रेति कथिता साक्षात् सदाभद्रार्थदायिनी।—सिद्ध सिद्धान्त पद्धति

२. छुरिकां संप्रवक्ष्यामि धारणां गसिद्धये।
संप्राप्य न पुनर्जन्म योगयुक्तः प्रजायते।

३. एकेली सबरी ए वन हिण्डइ
कर्ण कुण्डल वज्रधारी—चर्या० पद २८।

इस पर टीका—कर्णेति नानास्थाने कुण्डलादि पञ्चमुद्रा निरंशुकालंकारं कृत्वा वज्रमुपायज्ञानं विरत्य युगनद्धरूपेण अत्र कायपर्वत वने हिण्डति क्रीडति।

—बौ० गा० दो०, पृ० ४४।

४. वरगिरि सिहर उत्तुंग मुनि
सवरे जहिं किअ वास।
णउ सो लंघिअ पञ्चाननेहि
करिवर दुरिअ आस॥ २५॥

—बौ० गा० दो०, पृ० १३०।

प्रकार का कर्णकुण्डल धारण करते थे तो यह अनुमान भी असंगत नहीं है कि उनके प्रति नितरां श्रद्धाशील कानपा भी कर्णकुण्डल धारण करते होंगे। अद्वयवज्र ने इस पद के इस शब्द की भी रूपक के रूप में व्याख्या की है।

यद्यपि यही विश्वास किया जाता है कि मत्स्येंद्रनाथ ने या गोरक्षनाथ ने ही कर्णकुण्डल धारण करने की प्रथा चलाई थी तथापि कर्णकुण्डल कोई नई बात नहीं है। इस प्रकार के प्राचीन प्रमाण मिलते हैं जिससे अनुमान होता है कि कर्ण-कुण्डलधारी शिवमूर्तियाँ बहुत प्राचीन काल में भी बनती थीं। एलोरा गुफा के कैलास नामक शिवमन्दिर में शिव की एक महायोगी मुद्रा की मूर्ति पाई गई है। इस मूर्ति के कान में बड़े बड़े कुण्डल हैं। यह मंदिर और मूर्ति सन् ईसवी की आठवीं शताब्दी की हैं। परन्तु ये कर्णकुण्डल कनफटा योगियों की भाँति नहीं पहने गये हैं। ब्रिग्स ने बम्बई की लिटरैरी सोसायटी के अनुवादों से उद्धृत करके लिखा है कि सालसेटी, एलोरा और एलीफेंटा की गुफाओं में, जो आठवीं शताब्दी की हैं, शिव की ऐसी अनेक योगी-मूर्तियाँ हैं जिनके कान में वैसे ही बड़े बड़े कुण्डल हैं जैसे कनफटा योगियों के होते हैं और उनको कान में उसी ढँग से पहनाया भी गया है। इसके अतिरिक्त मद्रास के उत्तरी आरकट जिले में परशुरामेश्वर का जो मंदिर है उसके भीतर स्थापित लिंग पर शिव की एक मूर्ति है जिसके कानों में कनफटा योगियों के समान कुण्डल हैं। इस मंदिर का पुनः संस्कार सन् ११२६ ई० में हुआ था इस लिये मूर्ति निश्चय ही इसके बहुत पूर्व की होगी। टी० ए० गोपीनाथ राव ने इंडियन एंटिक्वैरी के चालीसवें जिल्द (१९११ ई०) में इस लिंग का वर्णन दिया है। इनके मत से यह लिंग सन् ईसवी की दूसरी या तीसरी शताब्दी के पहले का नहीं होना चाहिए। इन सब बातों को देखते हुए यह अनुमान करना असंगत नहीं कि मत्स्येंद्रनाथ के पहले भी कर्णकुण्डलधारी शिवमूर्तियाँ होती थीं। इससे परंपरा का भी कोई विरोध नहीं होता क्योंकि कहा जाता है कि शिवजी ने ही अपना वेश ज्यों का त्यों मत्स्येंद्रनाथ को दिया था। एक अनुश्रुति के अनुसार तो शिव का वह वेश पाने के लिये मत्स्येंद्रनाथ को दीर्घकाल तक कठोर तपस्या करनी पड़ी थी।

(३) गोरखनाथी शाखा

नाथपंथियों का मुख्य संप्रदाय गोरखनाथी योगियों का है। इन्हें साधारणतः कनफटा और दर्शनी साधु कहा जाता है। कनफटा नाम का कारण यह है कि ये लोग कान फाड़कर एक प्रकार की मुद्रा धारण करते हैं। इस मुद्रा के नाम पर ही इन्हें 'दरसनी' साधु कहते हैं। यह मुद्रा नाना धातुओं और हाथी दाँत की भी होती है। अधिक धनी महन्त लोग सोने की मुद्रा भी धारण करते हैं। गोरखनाथी साधु सारे भारतवर्ष में पाए जाते हैं। पंजाब, हिमालय के पाद देश, बंगाल और बम्बई में ये लोग 'नाथ' कहे जाते हैं। ये लोग जो मुद्रा धारण करते हैं वे दो प्रकार की होती हैं -- कुण्डल और दर्शन। 'दर्शन' का सम्मान अधिक है क्योंकि विश्वास किया जाता है

कि इसे धारण करने वाले ब्रह्म-साक्षात्कार कर चुके होते हैं। कुण्डल को 'पवित्री' भी कहते हैं।

इन योगियों की ठीक-ठीक संख्या कितनी है यह मर्दुमशुमारी की रिपोर्टों से भली भाँति नहीं जाना जाता। जार्ज वेस्टन ब्रिग्स ने अपनी मूल्यवान पुस्तक गोरखनाथ ऐण्ड दी कनफटा योगीज में भिन्न-भिन्न वर्षों की मनुष्य-गणना की रिपोर्टों से इनकी संख्या का हिसाब बताया है। सन् १८९१ की मनुष्य गणना में सारे भारतवर्ष में योगियों की संख्या २१४५४६ बताई गई थी। इसी वर्ष आगरा और अवध के प्रांतों में औघड़ ५३१९, गोरखनाथी २८८१६ और योगी (जिनमें गोरखनाथी भी शामिल हैं) ७८३८७ थे। इनमें औघड़ों को लेकर समस्त गोरखनाथियों का अनुपात ४५ फी सदी है। उसी रिपोर्ट के अनुसार योगियों में पुरुषों और स्त्रियों का अनुपात ४२ और ३५ का था। ये संख्याएं विशेष रूप से मनोरंजक हैं क्योंकि साधारणतः यह विश्वास किया जाता है कि ये योगी लोग ब्रह्मचारी हुआ करते हैं। वस्तुतः इनमें गृहस्थ और घरबारी लोग बहुत हैं। यह समझना भूल है कि केवल हिंदुओं में ही योगी हैं। उस साल की पंजाब की रिपोर्ट से पता चलता है कि ३८१३७ योगी मुसलमान थे। सन् १९२१ की मनुष्य-गणना में इनकी संख्या इस प्रकार है :—

जोगी हिंदू	६२९९७८	पुरुष/स्त्री	३२५/३०५
जोगी मुसलमान	३११५८	"	१६/१५
फकीर हिंदू	१४११३२	"	८०/६१

मनुष्य-गणना की परवर्ती रिपोर्टों में इन लोगों का अलग से कोई उल्लेख नहीं है[१]। इतना निश्चित है कि जोगियों में कनफटा साधुओं की संख्या बहुत अधिक है।

गोरखनाथी लोग मुख्यतः बारह शाखाओं में विभक्त हैं। अनुश्रुति के अनुसार स्वयं गोरखनाथ ने परस्पर विच्छिन्न नाथ पंथियों का संगठन करके इन्हें बारह शाखाओं में विभक्त कर दिया था। वे बारह पंथ ये हैं—सत्यनाथी, धर्मनाथी, रामपंथ, नटेश्वरी, कन्हड़, कपिलानी, वैराग, माननाथी, आईपंथ, पागलपंथ, धजपंथ और गंगानाथी। इन बारह पंथों के कारण ही शंकराचार्य के दशनामी संन्यासियों की भाँति इन्हें 'बारहपंथी योगी' कहा जाता है। प्रत्येक पंथ का एक एक विशेष 'स्थान' है जिसे ये लोग अपना पुण्य-क्षेत्र मानते हैं। प्रत्येक पंथ किसी पौराणिक देवता या महात्मा को अपना आदि प्रवर्तक मानता है। गोरखपुर के प्रसिद्ध सिद्ध महंत बाबा गंभीरनाथ के एक बंगाली शिष्य ने, संभवतः गोरखपुर की परंपरा के आधार पर, इन बारह पंथों का विवरण इस प्रकार दिया है[२] :—

---

१. विशेष विवरण के लिये दे० 'गोरखनाथ ऐण्ड दि कनफटा योगीज' पृ० ४-६

२. गंभीरनाथ प्रसंग, पृ० ५०-५१

सं०	नाम	मूलप्रवर्तक	स्थान	प्रदेश	विशेष
१	सत्यनाथी	सत्यनाथ	पाताल भुवनेश्वर	उड़ीसा	सत्यनाथ स्वयं ब्रह्मा का ही नाम है। इसी लिये ये लोग 'ब्रह्मा के योगी' कहलाते हैं।
२	धर्मनाथी	धर्मराज (युधिष्ठिर)	दुल्लुदेलक	नेपाल	...
३	रामपंथ	श्रीरामचंद्र	चौक तप्पे पंचौरा	गोरखपुर (युक्तप्रान्त)	इस समय ये लोग भी गोरखपुर के स्थान को ही अपना स्थान मानते हैं।
४	नाटेश्वरी	लक्ष्मण	गोरखटिला	झेलम (पंजाब)	इनकी दो शाखाएं हैं—नाटेश्वरी और दरियापंथी
५	कन्हड़	गणेश	मानफरा	कच्छ	...
६	कपिलानी	कपिल मुनि	गंगा सागर	बंगाल	इस समय कलकत्ते (दमदम) के पास 'गोरखवंशी' इनका स्थान है।
७	बैरागपंथ	भर्तृहरि	रतढोंडा	पुष्कर के पास अजमेर	...
८	माननाथी	गोपीचंद	अज्ञात	—	इस समय जोधपुर का महामंदिर मठ ही इनका स्थान है।
९	आई पंथ	भगवती विमला	जोगी गुफा या गोरख कुँई	बंगाल के दिनाजपुर जिले में	..
१०	पागलपंथ	चौरंगीनाथ (पूरन भगत)	अबोहर	पंजाब	...
११	धजपंथ	हनुमान जी	—	—	...
१२	गंगानाथी	भीष्म पितामह	जखबार	गुरुदासपुर (पंजाब)	...

एक अनुश्रुति के अनुसार शिव ने बारह पंथ चलाए थे और गोरखनाथ ने भी बारह ही पंथ चलाए थे। ये दोनों दल आपस में झगड़ते थे इसलिये बाद में स्वयं गोरखनाथ ने अपने छः तथा शिव जी के छः पंथों को तोड़ दिया और आजकल की बारह-पंथी शाखा की स्थापना की। यह अनुश्रुति पागल बाबा नाम के एक औघड़ साधु से सुनी हुई है। ब्रिग्स ने किसी और परंपरा के अनुसार लिखा है कि शिव के अट्ठारह पंथ थे और गोरखनाथ के बारह। पहले मत के बारह को और दूसरे के छः पंथों को तोड़ कर आधुनिक बारह पंथी शाखा बनी थी[1]। इन दोनों अनुश्रुतियों में पहली अधिक प्रामाणिक होगी। क्योंकि सांप्रदायिक ग्रंथों में शिव के दो प्रधान शिष्य बताए गए हैं—मत्स्येंद्रनाथ और जालंधरनाथ। मत्स्येंद्र के शिष्य गोरखनाथ थे। जालंधरनाथ द्वारा प्रवर्तित संप्रदाय कापालिक मार्ग होगा, इसका विचार हम पहले ही कर आए हैं। इन कापालिकों के बारह ही आचार्य प्रसिद्ध हैं। (आचार्यों और शिष्यों के नाम के लिये दे० पृ० ४ की टिप्पणी)। पुनर्गठित बारह संप्रदाय इस प्रकार हैं[2]—

शिवद्वारा प्रवर्तित :—

१. भूज (कच्छ) के कंठरनाथ
२. पेशावर और रोहतक के पागलनाथ
३. अफ़गानिस्तान के रावल
४. पंख या पंक
५. मारवाड़ के वन
६. गोपाल या राम के

गोरखनाथ द्वारा प्रवर्तित :—

१. हेठनाथ
२. आईपंथ के चोलीनाथ
३. चाँदनाथ कपिलानी
४. रतढोंडा, मारवाड़ का वैरागपंथ और रतननाथ
५. जयपुर के पावनाथ
६. धजनाथ महावीर

इन शाखाओं की बहुत-सी उपशाखाएँ हैं। कुछ प्रसिद्ध प्रसिद्ध उपशाखाओं का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है। परन्तु इतना ध्यान में रखना चाहिए कि इन बारह पंथों के बाहर भी ऐसे अनेक संप्रदाय हैं जिनका स्पष्ट संबंध इन छः मार्गों से नहीं जोड़ा जा सका है। हो सकता है कि वे गोरखनाथ द्वारा तोड़ दिए हुए कुछ पंथों के अनुयायी ही हों। ये लोग-शिव या गोरखनाथ से अपना सम्बन्ध किसी न किसी तरह जोड़ ही लेते हैं।

---

१. ब्रिग्स : पृ० ६३

२. ब्रिग्स : पृ० ६३ के आधार पर। इन संप्रदायों की यह सर्वसम्मत सूची नहीं समझी जानी चाहिए।

ऊपर जिन बारह मुख्य पंथों के नाम गिनाए गए हैं वे ही पुराने विभाग हैं। पर आजकल बारह पंथों में निम्नलिखित पंथ ही माने जाते हैं—(१) सतनाथ, (२) रामनाथ, (३) धरमनाथ, (४) लक्ष्मणनाथ, (५) दरियानाथ, (६) गंगानाथ, (७) वैराग, (८) रावल या नागनाथ, (९) जालंधरिपा, (१०) आईपंथ, (११) कपिलानी और (१२) धजनाथ। गोरखपुर में सुनी हुई परंपरा के अनुसार चौथी संख्या नाटेसरी और पांचवी कन्हड़ है,। आठवीं संख्या माननाथी, नवीं आईपंथ और दसवीं पागलपंथ है। ऊपर के संबंधों का विवेचन करने पर दोनों अनुश्रुतियों में कोई विशेष अंतर नहीं दिखता। केवल एक के अनुसार जो उपशाखा है वह दूसरी के अनुसार पंथ है। तेरहवां महत्त्वपूर्ण पंथ कानिपा का है जिसके विषय में ऊपर (पृ० ७) थोड़ी चर्चा हो चुकी है।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक पंथ हैं जिनका किसी बड़ी शाखा से संबंध नहीं खोजा जा सका। हाड़ी भारंग की चर्चा ऊपर हो चुकी है। वे लोग बंबई में रसोइए का काम करते पाए जाते हैं। गोरखनाथ के एक शिष्य सक्करनाथ थे जिन्हें उनके रसोइए ने स्वाद जानने के लिये पहले ही चखकर बनाई हुई दाल दी थी। इसी अपराध के कारण चार वर्ष तक उसे गले में हांड़ी बांधकर भीख मांगने का दण्ड दिया गया। बाद में सिद्धि प्राप्त करने के कारण इन्होंने अपना अलग पंथ चलाया। मुख्य स्थान पूने में हैं। इसके अतिरिक्त कायिकनाथी, पायलनाथी, उदयनाथी, आरयपंथ, फीलनाथी, चर्पटनाथी,[1] गैनी या गाहिणीनाथी[2], निरंजननाथ[3], वरंजोगी, पा-पंक, कामभज, कापाय, अर्धनारी, नायरी, अमरनाथ, कुंभीदास, तारकनाथ[4], अमापंथी, भृंगनाथ[5] आदि अनेक उपशाखाएं हैं जिनका विस्तार समूचे भारत-वर्ष और सुदूर अफगानिस्तान तक है।[6]

एक दूसरी परम्परा के अनुसार मत्स्येंद्रनाथ ने चार सम्प्रदाय चलाए थे—गोरखनाथी, पंगल या अरजनंगा (रावल) मीननाथ सिवतोर, पारसनाथ पूजा। अन्तिम दोनों जैन हैं।

---

१. वर्णरत्नाकर के इकतीसवें सिद्ध, हठ० के १६ वें सिद्ध तथा तिब्बती परंपरा के ५६ वें सिद्ध का नाम चर्पटी या चर्पटीनाथ है।

२. नामदेव परंपरा के गैनीनाथ और बहिनीबाई की परंपरा के गाहिनी नामक सिद्ध का उल्लेख है।

३. हठ० के बीसवें सिद्ध।

४. तारकनाथ विलेशय के शिष्य थे—यो० सं० आ०, पृ० २४६

५. नेपालराज के कमंडलु में भृंगरूप से प्रवेश करने के कारण मत्स्येंद्रनाथ का एक नाम भृंगनाथ था। कौलज्ञाननिर्णय पृ० ५८, श्लोक १७ में मत्स्येंद्रनाथ को भृंगपाद कहा गया है।

६. ब्रिग्सः पृ० ७३-७४

करने के लिये कठिन तपस्या की थी, एक दूसरा विश्वास यह है कि गोपीचन्द्र की प्रार्थना पर जालन्धरनाथ ने इस पंथ के योगियों को अन्य सम्प्रदाय वालों से विशिष्ट करने के लिये इस प्रथा को चलाया था। कुछ लोगों का कहना है कि गोरखनाथ ने भरथरी का कान फाड़कर इस प्रथा को चलाया था। भरथरी के कान में गुरु ने मिट्टी का कुण्डल पहनाया था। अब भी बहुत-से योगी मिट्टी का कुण्डल धारण करते हैं परन्तु इसके टूटने की सदा आशङ्का बनी रहती है इसलिये धातु या हरिण के सींग की मुद्रा धारण की जाती है। जो विधवा स्त्रियाँ सम्प्रदाय में दीक्षित होती हैं वे भी कुण्डल धारण करतीं हैं और गृहस्थ योगियों की पत्नियाँ भी इसे धारण करते पाई जाती हैं। गोरखपंथी लोग किसी शुभ दिन को (विशेष कर वसन्त पञ्चमी को) कान को चिरवाकर मंत्र के संस्कार के साथ इस मुद्रा को धारण करते हैं। उन लोगों का विश्वास है कि स्त्रियों के दर्शन से घाव पक जाता है इसलिये जब तक घाव अच्छा नहीं हो जाता तब तक स्त्री-दर्शन से बचने के लिये किसी कमरे में बंद रहते हैं, और फलाहार करते हैं।[1] कान का फट जाना भावाजोखी का व्यापार माना जाता है। जिस योगी का कान खराव हो जाता है वह सम्प्रदाय से अलग हो जाता है और पुजारी का अधिकार खो देता है।[2] यह कर्णकुण्डल निस्संदेह योगी लोगों का बहुत पुराना चिह्न है परन्तु कुछ ऐसे भी हैं जो इसे नहीं धारण करते। ये लोग औघड़ कहे जाते हैं। औघड़ लोगों का जब कर्णमुद्रा-संस्कार हो जाता है तब उन्हें योगी कनफटा कहा जाता है। ऐसे भी औघड़ हैं जो आजीवन कर्णमुद्रा धारण करते ही नहीं। कहते हैं कि हिंगलाज में दो सिद्ध एक शिष्य का कान चीरने लगे थे पर हरबार छेद बन्द हो जाता था। तभी से औघड़ लोग कान चिरवाते ही नहीं।[3] सुधारक मनोवृत्ति के योगी लोग मानते हैं कि श्रीनाथ ने यह प्रथा इसलिये चलाई होगी कि कान चिरवाने की पीड़ा के भय से अनधिकारी लोग इस सम्प्रदाय में प्रवेश ही नहीं कर सकेंगे[4]।

प द्मा व त में मलिक मुहम्मद जायसी ने योगियों के वेश का सुन्दर वर्णन दिया है। उस पर से अनुमान किया जा सकता है कि योगियों का जो वेश आज है वह दीर्घ काल से चला आ रहा है। राजा ने हाथ में किंगरी सिर पर जटा, शरीर में भस्म, मेखला, शृंगी, योग को शुद्ध करने वाला धँधारी चक्र, रुद्राक्ष और अधार (आसन का पीढ़ा) धारण किया था। कंथा पहन कर हाथ में सोंटा लिया था और 'गोरख गोरख' की रट लगाता हुआ निकल पड़ा था, उसने कंठ में मुद्रा कान में रुद्राक्ष की माला, हाथ में कमण्डल, कंधे पर बघम्बर (आसन के लिये), पैरों में पाँवरी सिर पर छाता और बगल में खप्पर धारण किया था। इन सब को उसने गेरुए रंग

---

१. सु० चं०, पृ० २४१

२ ब्रिग्सः पृ० ८-६

३. ट्रा० का० सें० प्रो० २य भाग पृ० ३६८, ब्रिग्स ने लिखा है कि औघड़ लोगों को योगियों से आधी ही दक्षिणा मिलती है। कहीं कहीं समान भी मिलती है।

४. यो० सं० आ०

गोरक्ष[1] के निम्नलिखित शिष्यों ने पंथ चलाए—

कपिल मुनि, करकाई, भूण्टाई, सक्करनाथ, संतनाथ, लक्ष्मणनाथ।

कपिल मुनि के शिष्य अजयपाल हुए जिन्होंने कपिलानी पं-
परम्परा में एक दूसरे सिद्ध गंगानाथ हुए जिनका अलग पंथ च
करकाई शाखा में आईपंथ के प्रवर्तक चोलीनाथ हुए। इनका र
भी बताया जाता है।

सक्करनाथ का कोई अपना सम्प्रदाय नहीं है पर हाड़ी भरंग
शिष्य का प्रवर्तित है।

संतनाथ के शिष्य धर्मनाथ हुए जिन्होंने अपना पंथ चलाय
शिष्य रामनाथ हुये। जाफिर पीर भी इन्हीं के साथ अपना र
लक्ष्मणनाथ की शाखा में नटेसरी और दरियानाथ पड़ते हैं।
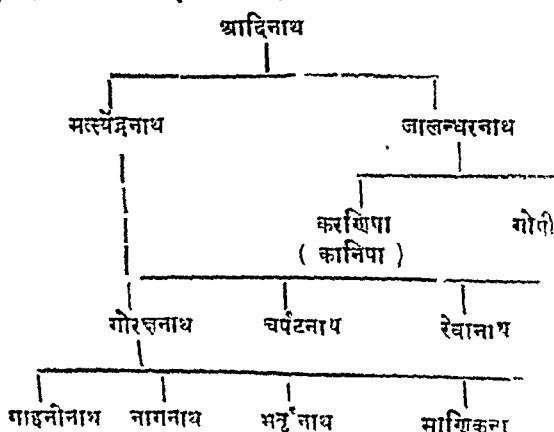
जालंधरनाथ के दो शिष्य हुए—भरथरीनाथ और कानिपा।

कानिपा संप्रदाय से सिद्ध सांगरी सम्प्रदाय उद्भूत हुआ।

(४) नाथ योगी का वेश

नाथ योगी को स्पष्ट रूप से पहचाना जा सकता है। से-
गूदरी, खप्पर, कर्ण, मुद्रा, बघंबर, झोला आदि चिह्न ये लोग धा
ही बताया गया है कि कान फाड़कर कुंडल धारण करने के का
कहे जाते हैं। कान फड़वाने की प्रथा किस प्रकार शुरू हुई इस
की दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। कुछ लोग बताते हैं कि स्वयं मत्स्ये-
ने इस प्रथा का प्रवर्तन किया। उन्होंने शिव के कानों में कुण्डल

---

१ योगिसंप्रदायाविष्कृति के अनुसार मत्स्येंद्रनाथ और
नाथ) की शिष्य परंपरा इस प्रकार है :—

के नीचे जनेव दिखा दिया था। कबीरदास ने उसी योगी को योगी कहना उचित समझा था जो इन चिह्नों को मन में धारण करता है।[1]

'धंधारी' एक तरह का चक्र है। गोरखपंथी साधु लोहे या लकड़ी की शलाकाओं के हेर फेर से चक्र बना कर उसके बीच में छेद करते हैं। इस छेद में कौड़ी या मालाकार धागे को डाल देते हैं। फिर मंत्र पढ़ कर उसे निकाला करते हैं। बिना क्रिया जाने उस चक्र में से सहसा किसी से डोरा या कौड़ी नहीं निकल पाती। ये चीजें चक्र की शलाकाओं में इस प्रकार उलझ जाती हैं कि निकालना कठिन पड़ जाता है। जो निकालने की क्रिया जानता है वह उसे सहज ही निकाल सकता है। यही 'धांधरी' या गोरखधंधा है। गोरखपंथियों का विश्वास है कि मंत्र पढ़ पढ़ कर गोरखधंधे से डोरा निकालने से गोरखनाथ की कृपा से ईश्वर प्रसन्न होते हैं और संसार-चक्र में उलझे हुए प्राणियों को डोरे की भांति इस भवजाल से मुक्त कर देते हैं।[2]

रुद्राक्ष की माला प्रसिद्ध ही है। योगी लोग जिस माला को धारण करते हैं। उस में ३२, ६४, ८४ या १०८ मनके होते हैं। छोटी मालायें जिन्हें 'सुमिरनी' कहते हैं १८ या २८ मनकों की होती है और कलाई में बँधी रहती है। रुद्राक्ष शब्द का अर्थ रुद्र या शिव की आंख है। तंत्रशास्त्र के मत से यह माला जपकार्य में विशेष फलदायिनी होती है। इस रुद्राक्ष में जो खरबूजे के फाँक जैसी जो रेखायें होती हैं उसे 'मुख' कहते हैं। जप में प्रायः पंचमुखी रुद्राक्ष का विशेष महत्त्व है। एकमुखी रुद्राक्ष बड़ा शुभ माना जाता है। घर में उसके रहने से लक्ष्मी अविचल हो कर बसती हैं। जिसके गले में एकमुखी रुद्राक्ष हो उस पर शस्त्र की शक्ति नहीं काम करती—ऐसा विश्वास है। एकमुखी रुद्राक्ष असल में एकमुखी ही है या नहीं इस बात की परीक्षा के लिये प्रायः भेड़े के गले में बांध कर परीक्षा की जाती है। यदि भेड़े की गर्दन शस्त्र से कट जाय तो वह नक़ली माना जाता है। यदि न कटे तो सच्चा एकमुखी रुद्राक्ष समझा जाता है[3]। ग्यारह मुख वाला रुद्राक्ष भी बहुत पवित्र समझा जाता है। गृहस्थ योगी साधारणतः दोमुख वाले रुद्राक्ष से जप करने को अधिक फलदायक मानते हैं।

'अधारी' (=आधार) काठ के डंडे में लगा हुआ काठ का पीढ़ा (आसा) है जिसे योगी लोग प्रायः लिये फिरते हैं और जहाँ कहीं रख कर उस पर बैठ जाते हैं।

---

१. सो जोगी जाके मन में मुद्रा।
   रात दिवस ना करई निद्रा ॥ टेक ॥
   मन में आसण मन में रहणां। मन का जप तप मन सूं कहँणां ॥
   मन मैं षपरा मन मैं सींगी। अनहदनाद बजावै रंगी ॥
   पंच प्रजारि भसम करि भूका। कहै कबीर सो लहसै लंका।

क.ग्रं. पद २०६, पृ० १२८

२. सु. चं : पृ० २३६
३. वही : पृ० २४०

में रंगकर लाल कर लिया था।[1] कबीरदास के अनेक पदों से पता चलता है कि जोगी लोग मुद्रा, नाद, कंथा, आसन, खप्पर, झोली, विभूति, बटुवा आदि धारण करते थे, यंत्र अर्थात सारंगी यंत्र का व्यवहार करते थे (गोपीचन्द्र का चलाया हुआ होने के कारण सारंगी को गोपीयंत्र कहते हैं), मेखला और भस्म धारण करते थे। (क० ग्रं० २०५, २०६, २०७, २०८) और अजपा जाप करते थे (२०९)[2] इसी प्रकार सूरदास के भ्रमरगीत में गोपियों ने जिन योगियों की चर्चा की है उनका भी यही वेश वर्णित है।

इन चिह्नों में किंगरी एक प्रकार की चिकारी है जिसे पौरिये या भर्तृहरि के गीत गाने वाले योगी लिए फिरते हैं, मेखला मूंज की रस्सी का कटिबंध है[3] और सींगी हरिण के सींग का बना हुआ एक बाजा है जो मुँह से बजाया जाता है। औघड़ और योगी दोनों ही एक प्रकार का 'जनेव' धारण करते हैं जो काले भेड़े की ऊन से बनाया जाता है। हर कोई उसे नहीं बना सकता। संप्रदाय के कुछ लोग ही, जो इस विद्या के जानकार होते हैं, उसे बनाते हैं। ब्रिग्स (पृ० ११) ने लिखा है कि कुमायूं के योगी रुई के सूत का 'जनेव' भी धारण करते हैं। इसी सूत में एक गोल 'पवित्री' बंधी रहती है जो हरिण की सींग या पीतल तांबा आदि धातु से बनी होती है। इसमें रुई के सफेद धागे से शृंगी (सिंगी नाद) नाम की सीटी बंधी रहती है और रुद्राक्ष की एक मनिया भी झूलती रहती है। प्रातः और संध्या कालीन उपासना के पूर्व और भोजन ग्रहण करने के पूर्व योगी लोग इसे बजाया करते हैं। इस सिंगनाद के बंधे रहने के कारण ही 'जनेव' को 'सिंगीनाद-जनेव' कहते हैं। मेखला सब योगी नहीं धारण करते। कुछ योगी काले भेड़े के ऊन की बनी मेखला कमर में बांधते हैं। लंगोटी पहनने में इस मेखला का उपयोग होता है। एक और प्रकार की मेखला होती है जिसे धारण करने के बाद योगी को भिक्षा के लिये निकलना ही पड़ता है। इसे हाल मटंगा कहते हैं।[4] ऐसे योगी भी हैं जो सिंगनाद जनेव नहीं धारण करते और दावा करते हैं कि ये चिह्न उन्होंने अन्तर में धारण किया है या चमड़े के नीचे पहने हुए हैं। मस्तनाथ नामक सिद्ध के विषय में प्रसिद्ध है कि उन्होंने अपने चमड़े

---

१. पद्मावत, जोगी खंड, १२, १२८

२. बंगाल के पुराने नाथपंथी अपने को योगी या कापालिक कहते थे। वे कान में मनुष्य की हड्डियों का कुण्डल और गले में हड्डियों की ही माला धारण करते थे। पैरों में ये लोग नूपुर और हाथ में नर कपाल लेते थे और शरीर में भस्म लगाया करते थे।—श्री सुकुमार सेन: प्राचीन बांगला ओ बाङ्गाली, विश्वविद्या संग्रह सिरीज शांति निकेतन पृ० ३३। ऐसा जान पड़ता है कि कर्णकुण्डल धारण करने की प्रथा बहुत पुरानी है साधनमाला नामक वज्रयानी साधन ग्रंथों में 'हेरुक' के ध्यान में कहा गया है कि वे कानों में नरास्थि की माला धारण करते हैं। इसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

३. सु० चं०: पृ० २३८, २३९

४. ब्रिग्स: पृ० ११, १२

के नीचे जनेव दिखा दिया था। कबीरदास ने उसी योगी को योगी कहना उचित समझा था जो इन चिह्नों को मन में धारण करता है।[1]

'धंधारी' एक तरह का चक्र है। गोरखपंथी साधु लोहे या लकड़ी की शलाकाओं के हेर फेर से चक्र बना कर उसके बीच में छेद करते हैं। इस छेद में कौड़ी या मालाकार धागे को डाल देते हैं। फिर मंत्र पढ़ कर उसे निकाला करते हैं। बिना क्रिया जाने उस चक्र में से सहसा किसी से डोरा या कौड़ी नहीं निकल पाती। ये चीजें चक्र की शलाकाओं में इस प्रकार उलझ जाती हैं कि निकालना कठिन पड़ जाता है। जो निकालने की क्रिया जानता है वह उसे सहज ही निकाल सकता है। यही 'धांधरी' या गोरखधंधा है। गोरखपंथियों का विश्वास है कि मंत्र पढ़ पढ़ कर गोरखधंधे से डोरा निकालने से गोरखनाथ की कृपा से ईश्वर प्रसन्न होते हैं और संसार-चक्र में उलझे हुए प्राणियों को डोरे की भांति इस भवजाल से मुक्त कर देते हैं।[2]

रुद्राक्ष की माला प्रसिद्ध ही है। योगी लोग जिस माला को धारण करते हैं। उस में ३२, ६४, ८४ या १०८ मनके होते हैं। छोटी मालायें जिन्हें 'सुमिरनी' कहते हैं १८ या २८ मनकों की होती है और कलाई में बँधी रहती है। रुद्राक्ष शब्द का अर्थ रुद्र या शिव की आंख है। तंत्रशास्त्र के मत से यह माला जपकार्य में विशेष फलदायिनी होती है। इस रुद्राक्ष में जो खरबूजे के फाँक जैसी जो रेखायें होती हैं उसे 'मुख' कहते हैं। जप में प्रायः पंचमुखी रुद्राक्ष का विशेष महत्त्व है। एकमुखी रुद्राक्ष बड़ा शुभ माना जाता है। घर में उसके रहने से लक्ष्मी अविचल हो कर बसती हैं। जिसके गले में एकमुखी रुद्राक्ष हो उस पर शस्त्र की शक्ति नहीं काम करती—ऐसा विश्वास है। एकमुखी रुद्राक्ष असल में एकमुखी ही है या नहीं इस बात की परीक्षा के लिये प्रायः भेड़े के गले में बांध कर परीक्षा की जाती है। यदि भेड़े की गर्दन शस्त्र से कट जाय तो वह नक़ली माना जाता है। यदि न कटे तो सच्चा एकमुखी रुद्राक्ष समझा जाता है[3]। ग्यारह मुख वाला रुद्राक्ष भी बहुत पवित्र समझा जाता है। गृहस्थ योगी साधारणतः दोमुख वाले रुद्राक्ष से जप करने को अधिक फलदायक मानते हैं।

'अधारी' (=आधार) काठ के डंडे में लगा हुआ काठ का पीढ़ा (आसा) है जिसे योगी लोग प्रायः लिये फिरते हैं और जहां कहीं रख कर उस पर बैठ जाते हैं।

---

१. सो जोगी जाके मन में मुद्रा।
रात दिवस ना करई निद्रा ॥ टेक ॥
मन में आसण मन में रहणां। मन का जप तप मन सूं कहणां ॥
मन मैं षपरा मन मैं सींगी। अनहद नाद बजावै रंगी ॥
पंच प्रजारि भसम करि भूका। कहै कबीर सो लहसै लंका।
क.ग्रं. पद २०६, पृ०-१९८

२. सु. चं : पृ०।२३६

३. वही : पृ० २४०

बिना अभ्यास के इस पर बैठ सकना असंभव है [१]। कंथा गेरुए रंग की सुजनी का चोलना है जो गले में डाल लेने से अंग को ढाँक लेता है। इसी को गूदरी कहते हैं। यह फटे पुराने चिथड़ों को बटोर कर सीं ली जानी चाहिए [२]। गेरुआ या लाल रंग ब्रह्मचर्य का साधक माना जाता है। इसे धारण करने से वीर्यस्तंभ की शक्ति बढ़ती है। क्रुक्स ने एक दन्तकथा का उल्लेख किया है जिसके अनुसार पार्वती ने पहले पहल अपने रक्त से रंग कर एक चोलना गोरखनाथ को दिया था। कहते हैं तभी से लाल (गेरुआ) रंग योगी लोगों का रंग हो गया है। 'सोंटा' झाड़ फूंक करने का डंडा है जो हाथ डेढ़ हाथ के काले रूलर के ऐसा होता है। बहुत से योगी इसे भैरवनाथ का और बहुत से गोरखनाथ का डंडा या सोंटा कहते हैं [२]। योगी लोग शरीर में भस्म लगाते हैं और ललाट पर और बाहुमूल तथा हृदय देश पर भी त्रिपुण्ड्र लगाया करते हैं। गूदरी का धारण करना योगी के लिए आवश्यक नहीं है। बहुत योगी तो आरबंद (मेखला) से बंधी हुई लंगोटी ही भर धारण करते हैं और बहुत से ऐसे भी मिलते हैं जो लंगोटी भी नहीं धारण करते [३]। 'खप्पर' मिट्टी के घड़े के फोड़े हुये अर्द्ध भाग को कहते हैं। आज कल यह दर्यायी नारियल का बनता है। बहुत से योगी काँसे का भी खप्पर रखते हैं इसलिए खप्पर को 'काँसा' भी कहते हैं। खप्पर का एक मनोरंजक अवशेष 'जोगीड़े' नामक अश्लील गानों के गाते समय लिया हुआ चौड़े मुँह का वह घड़ा है जिसमें गुरु लोग आँख रखकर जादू से हाथ पर लिये फिरते हैं। [४]

योगिसंप्रदायाविष्कृति नामक ग्रंथ में [५] इन चिह्नों के धारण करने की विधि और कारण के बारे में यह मनोरंजक कहानी दी हुई है। जब मत्स्येंद्रनाथ जी से प्रसन्न होकर शिवजी ने कहा कि तुम वर माँगो तो उन्होंने शिवजी का स्वरूप ही वरदान में माँगा। शिवजी ने पहले तो इतस्ततः किया पर मत्स्येंद्रनाथ की तपस्या से प्रसन्न होकर अन्त में अपना वेश दान करने को राजी हो गए। फिर प्रथम तो सिर में विभूति डालकर भस्मस्नान कराया और उसका यह तात्पर्य बताया कि यह भस्म अर्थात् मृत्तिका है, इसके शरीर में धारण करने का अभिप्राय यह है कि योगी अपने को मानापमान के अतीत जड़धरित्री के समान समझें या अग्नि-संयोग से भस्म रूप में परिणत हुए काठ की तरह ज्ञानाग्नि दग्ध होकर अपनी कठोरता आदि को छोड़ दे और ज्ञानाग्नि के संयोग से अपने कृत्यों को भस्मसात् कर दे। फिर जलस्नान कराया और उसके दो अभिप्राय बताए। एक तो यह कि मेघ जिस प्रकार जल को समान भाव से भूतमात्र के लिये वितरण करता है उसी प्रकार तुम समस्त प्राणियों के साथ

---

१. सु० चं: पृ० २४०

२. वही: पृ० २४०

३. ब्रिग्स: पृ० १९-२०

४. सु०: चं० पृ० २४१

५. यो० सं० आ० पृ० २०-२१

समान व्यवहार करना और दूसरा यह कि पानी जिस प्रकार तप्त होने पर भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ता उसी प्रकार तुम भी अपना स्वभाव न छोड़ना। इसके अनन्तर श्री महादेव जी ने तीसरे उन्हें 'नाद-जनेउ' पहनाया और उसका यह अभिप्राय समझाया: काष्ठादि का बनाया हुआ यह नाद है। नाद अर्थात् शब्द। इसके धारण करने का मतलब यह हुआ कि अब से शिष्य अपनी उत्पत्ति 'नाद' से समझे। (शब्द गुरु और श्रोता चेला—ऐसा योगियों का सिद्धान्त है) और यह ऊर्णादि निर्मित 'जनेउ' जिस प्रकार संसार के अन्य 'जनेउओं' से भिन्न है उसी प्रकार तुम अपने को संसार से भिन्न समझना। इस प्रकार प्रत्येक वस्तु के धारण करने का ठीक-ठीक कारण समझाने के बाद महादेव जी ने कुण्डलादि धरने अनेक चिह्न मत्स्येंद्रनाथ जी को दिये। तभी से संप्रदाय में यह प्रथा प्रचलित हुई। इतना लिखने के बाद ग्रंथकार ने बड़े खेद के साथ लिखा है कि आजकल संप्रदाय में इन अभिप्रायों को कोई नहीं जानता। इस ज्ञान के अभाव का कारण उन्होंने यह बताया है कि धनाढ्य महन्त लोग शिमला मंसूरी नैनीताल और आबू जैसी जगहों में हवा बदलने जाते हैं और उनके पीछे उनके स्थानों पर उन्हीं के नाम पर शिष्य बनाए जाते हैं। अब भला जिस शिष्य ने वेश ग्रहण करने के समय जिस व्यक्ति के शब्द को गुरु समझा है उसका मुंह-मत्था भी नहीं देखा वह उन चिह्नों का क्या अभिप्राय समझ सकता है![1]

इब्नबतूता नामक मिश्री पर्यटक जब भारत आया था तो उसने इन योगियों को देखा था। उसने लिखा है कि उन (योगियों) के केश पैर तक लम्बे होते हैं, सारे शरीर में भभूत लगी रहती है और तपस्या के कारण उनका वर्ण पीत हो गया होता है। चमत्कार प्राप्त करने की शक्ति प्राप्त करने के इच्छुक बहुत से मुसलमान भी इनके पीछे लगे फिरते हैं, मावरा उन्नहर के सम्राट 'तरम शीरीं, के कैंप में बतूता ने इनको सर्व प्रथम देखा था। गिनती में ये पूरे पचास थे। इनके रहने के लिये धरती में गुफाएँ बनी हुई थीं और वहां ये अपना जीवन व्यतीत करते थे, केवल शौच के लिये बाहर आते थे और प्रातः सायं तथा रात्रि में शृंग के सदृश किसी वस्तु को बजाया करते थे।[2] इब्नबतूता ने इन योगियों की अद्भुत करामातों को स्वयं देखा था। बतूता की गवाही पर यह मान लिया जा सकता है कि दीर्घ काल से साधारण जनता इन योगियों को भय की दृष्टि से देखती रही है। उन दिनों ग्वालियर के पास किसी बरौन नामक ग्राम में एक बाघ का बड़ा उपद्रव था। लोगों ने बतूता को बताया कि वह कोई योगी है जो बाघ का रूप धर के लोगों को खा जाता है

कबीरदास के जमाने में ही योगियों का सैनिक संगठन हो चुका था। उन्होंने इन

---

१. इ० भा० या० : पृ० २६२-३

२. वही पृ० २८८

योगियों की इस विचित्र लीला का बड़ा मनोहर वर्णन दिया है [१]। सोलहवीं शताब्दी में इन योगियों से सिक्खों की घनघोर लड़ाई हुई थी। दिनोधर के मठ की दीवारों में शस्त्र फेंकने के लिये छिद्र बने हुए हैं जो निश्चय ही आत्मरक्षा के उद्देश्य से बने होंगे। कच्छ के योगी सोलहवीं शताब्दी में भयंकर हो उठे थे वे अतीथों को जबर्दस्ती कनफटा बनाते थे। बाद में अतीथों ने संगठित होकर लोहा लिया था। इन अतीथों का प्रधान स्थान जूनागढ़ था। इस लड़ाई में योगियों की शक्ति टूट गई थी [२]।

(५) गृहस्थ योगी

नाथमत को मानने वाली बहुत सी जातियाँ घर बारी हो गई हैं। भारतवर्ष के हर हिस्से में ऐसी जातियों का अस्तित्व पाया जाता है। शिमला पहाड़ियों के नाथ अपने को गोरखनाथ और भरथरी का अनुयायी मानते हैं। ये लोग गृहस्थ होकर एक जाति ही बन गए हैं। यद्यपि ये भी कान चीर कर कुण्डल ग्रहण करते हैं पर इनकी मर्यादा कनफटे योगियों से हीन मानी जाती है। ये लोग उत्तरी भारत के महाब्राह्मणों के समान श्राद्ध के समय दान पाते हैं [३]। ऊपरी हिमालय के नाथों में भी कानचिरवा कर कुण्डल धारण करने की प्रथा है परन्तु घर में कोई एक या दो आदमी ही ऐसा करते हैं। ऐसा करने वाले 'कनफटा नाथ' कहलाते हैं। ये भी गृहस्थ हैं। और इनकी मर्यादा भी बहुत ऊँची नहीं है। हेली जैसी नीच समझी जाने वाली जाति के लोग भी इनका अन्न जल नहीं ग्रहण करते [४]। अलमोड़े में सतनाथी और धर्मनाथी संप्रदाय के गृहस्थ योगी हैं। इनके परिवार का कोई एक लड़का कान में कुण्डल धारण कर लेता है [५]। योगियों में विवाह की प्रथा भी पाई जाती है। कहीं कहीं ब्राह्मण विवाह का संस्कार कराते हैं और कहीं कहीं नाथ-ब्राह्मण नामक जाति। पंजाब में गृहस्थ योगियों को रावल कहा जाता है। ये लोग भीख माँगकर करामात दिखाकर हाथ देखकर अपनी जीविका चलाते हैं। पंजाब के संयोगी अब एक जाति ही बन गये हैं। अम्बाला के संयोगियों के बारह पंथ भी हैं पर ये सब गृहस्थ हैं। गढ़वाल के नाथ भैरव के उपासक

१. ऐसा जोग न देखा भाई। भूला फिरै लिये गाफिलाई।
महादेव को पंथ चलावै। ऐसो बड़ो महंत कहावै।
हाट बजारैं लावैं तारी। कच्चे सिद्धन माया प्यारी।
कब दत्ते मावासी तोरी। कब सुख देव तोपची जोरी।
नारद कब बंदूक चलाया। व्यासदेव कब बंब बजाया।
करइँ लराई मति कै मंदा। ई अतीत की तरकस बंदा।
भए विरक्त लोभ मन ठाना। सोना पहिरि लजावैं बाना।
घोरा घोरी कीम बटोरा। गाँव पाय जस चलैं करोरा॥

—बीजक ६१वीं रमैनी

२. ग्लो० पं० ट्रा० का: पृ० १६५
३. वही: पृ० १६९
४. वही: पृ० १३९
५. ब्रिग्स: पृ० ७७

हैं, नादी-सेली पहनते हैं और सन्तान भी उत्पन्न करते हैं। अब यह भी एक अलग जाति बन गए हैं [१]।

साधारणतः वयनजीवी जातियाँ जैसे ताँती जुलाहे, गड़ेरिए, दरजी आदि नाथ मत के मानने वाले गृहस्थों में पड़ती हैं। सूत का रोजगार योगी जाति का पुराना व्यवसाय है। बहुत सी गृहस्थ योगियों की जातियाँ मुसलमान हो गई हैं और अपने को अब भी गिरस्त या गृहस्थ कहती हैं। अलईपुरा के जुलाहे ऐसे ही हैं[२]। हमने अपनी कबीर नामक पुस्तक में दिखाया है कि कबीरदास ऐसी ही किसी गिरस्त योगी जाति के मुसलमानी रूप में पैदा हुए थे। बुंदेलखंड के गड़ेरिए नाथ योगियों के अनुयायी हैं। उनके पुरोहित भी 'योगी' ब्राह्मण होते हैं जो उनके विवाहादि संस्कार कराते हैं। विवाह के मंत्रों में गोरखनाथ और मछन्दरनाथ के नाम भी आते हैं [३]। शेख फैजुल्लाह नामक बंगाली कवि की एक पुस्तक गोरक्षविजय है। इसके संपादक श्री अब्दुल करीम साहब का दावा है कि पुस्तक पांच छः सौ वर्ष पुरानी होगी। इस पुस्तक में कदली देश की जोगिन (अर्थात् योगी जाति की स्त्री) से गोरखनाथ को भुलावा देने के प्रसंग में इस प्रकार कहवाया गया है—"तुम जोगी हो, जोगी के घर जाओगे, इसमें भला सोचना विचारना क्या है। हमारा तुम्हारा गोत्र एक है। तुम बलिष्ठ योगी हो मैं जवान जोगिन हूँ, फिर क्यों न हम अपना व्यवहार शुरू कर दें, क्यों हम किसी की परवा करें...मैं चिकना सूत कात दूँगी, तुम उसकी महीन धोती बुनोगे और हाट में बेंचने ले जाओगे और इस प्रकार दिन दिन सम्पत्ति बढ़ती जायगी जो तुम्हारी झोली और कंथा में अँटाए नहीं अँटेगी [४]। इससे सिद्ध होता है कि बहुत प्राचीन काल से वयनजीवी जातियाँ योगी हैं। आधुनिक योगी भी सूत के द्वारा अनेक टोटका करते हैं और गोरखधंधे से सूते की ही करामात दिखाते हैं।

बंगाल में जुगी या योगी वयनजीवी जाति है। सन् १९२१ में अकेले बंगाल में इनकी संख्या ३६५९१० थी। आजकल ये लोग अपने को योगी ब्राह्मण कहते हैं [५]। टिपरा जिले के कृष्णचन्द्र दलाल ने इन्हें बदस्तूर ब्राह्मण बनाने और जनेऊ धारण करने का अन्दोलन किया था [६]। इस प्रकार वयनजीवियों में इस मत का बहुत कुछ

---

१. गढ़वाल का इतिहास: पृ० २०१

२. श्री राय कृष्णदास जी के एक पत्र के आधार पर।

३. लोकवार्ता वर्ष १ अंक २ में श्री रामस्वरूप योगी का लेख द्रष्टव्य है। वैवाहिक शाखोच्चार के मंत्र का एक अंश इस प्रकार है, 'गाय गोरख की भैंस मछन्दर की, छेरी अजैपाल की, गाडर महादेव की चरती आय चरती आय जहाँ महादेव कीधिं गी बाजै...' इत्यादि।

४. गोरक्षविजयः कलकत्ता (१३२४ बं० सन्) पृ० ६५-७

५. कबीर: पृ० ७

६. क्षितिमोहन सेनः भारतवर्ष में जाति भेद, पृ० १४४

प्रचार था। यह तो नहीं जाना जा सका कि सभी वयनजीवियों में [1] योग परंपरा के चिह्न हैं परंतु इसमें कोई सन्देह नहीं कि वयनजीवी जातियों में अपनी वर्तमान स्थिति के बारे में असन्तोष है और वे सभी किसी ब्राह्मणेतर परंपरा से संबद्ध अवश्य थीं।

---

२. ब्रेन्स ने निम्नलिखित वयनजीवी जातियों का उल्लेख किया है :—

	नाम	प्रदेश	१९०१ की जन संख्या
रुई सूत के वयनजीवी—	पटनूली	पश्चिम भारत	९०५००
	पटघे	उत्तर और मध्य भारत	७२०००
	खतरी	पश्चिम भारत	५६२०००
	ताँती	बंगाल	७७२३००
	ततवा	विहार	१९७९००
	पेरिके	तामिल	६३०००
	जगण्पन	,,	८३०००
	कपाली	बंगाल	१४४७००
	धोर	दाक्षिणात्य	२४४००
	पांका	मध्यभारत	७२६५००
	गांडा	पूर्व-मध्यभारत	२७७८००
	डोंबा	विहार	७६४००
	कोरी	उत्तर भारत	१२०४७००
	जुलाहा	उत्तर भारत	२९०७९००
	बलाही	राजपूताना, उ० भा०	२८५१००
	कैकोलन	तामिल	३५४७००
	साले	दक्षिण	६३९३००
	तोगट	कर्नाटक	६४५०००
	देवांग	,,	२८८९०००
	नेयिगे	,,	९७०००
	जुगी	बंगाल	५३६६००
	कोष्टी	दक्षिण, मध्यभारत	२७७४००
ऊन के वयनजीवी—	गड्डी	पंजाब	१०३८००
	गड़रिया	उ० भा०	१२७२४००
	धंगर हातकर	द० भा०	१०१५८००
	कुडुवर	,,	१०६८००
	इडइयन	तामिल	७०२७००
	भरघाड़	पश्चिम भा०	१०२९००

रिजली ने बंगाल के योगियों को दो श्रेणी का बताया है। दक्षिणी विक्रमपुर, त्रिपुरा और नोयाखाली के योगी मास्थ योगी कहलाते हैं और उत्तर विक्रमपुर और ढाका के योगी एकादशी कहलाते हैं।[1] रंगपुर जिले के योगियों का काम कपड़ा बुनना, रंगसाजी और चूना बनाना है। अब ये लोग अपना पेशा छोड़ते जा रहे हैं। इनके स्मारणीय महापुरुष हैं—गोरखनाथ, धीरनाथ, छायानाथ, और रघुनाथ आदि। इनके परम उपास्य देवता 'धर्म' है। इनके गुरु और पुरोहित ब्राह्मण नहीं होते बल्कि इनकी अपनी ही जाति के लोग होते हैं। पुरोहितों को 'अधिकारी' कहते हैं। चौरकर्म के समय बालकों का कान चीर देना निहायत जरूरी समझा जाता है। मृतक को समाधि दी जाती है। रंगपुर के योगियों का प्रधान व्यवसाय चूना बनाना और भीख मांगना है परन्तु ढाका और टिपरा (त्रिपुरा) जिले में उनका व्यवसाय वस्त्र बुनना ही है।[2] निजाम-राज्य के दवरे और रावल भी नाथ योगियों का गृहस्थ रूप है। इनके बच्चों के कान छेदने का संस्कार होता है और मृतकों को समाधि दी जाती है। बंबई प्रान्त के नाथों में जो मराठे और कर्नाटकीय हैं वे गृहस्थ हैं। कोंकण के गोसवी भी अपने को नाथ योगियों से संबद्ध बताते हैं। इनका भी कर्ण-छेद संस्कार होता है। इस प्रकार की योगी जातियाँ बरार गुजरात महाराष्ट्र करनाटक, और दक्षिण भारत में भी पाई जाती हैं।[3]

इस प्रकार क्या वैराग्यप्रवण और गार्हस्थप्रवण सैकड़ों योगी संप्रदाय और जातियां समूचे भारत में फैली हुई हैं। यह परंपरा वैदिक धर्म से भिन्न थी और अब भी बहुत कुछ है, इसका आभास ऊपर के विवरण से मिल गया होगा। हम आगे चल कर देखेंगे कि अनुमान निराधार नहीं है।

---

१. ब्रिग्स. : पृ० ५१

२. गो पी चं दे र गा न : (कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित, द्वितीय भाग, भूमिका पृ० ३६-३७

३. ब्रिग्स : (पृ० ४४-६१) ने इस प्रकार की अनेक योगी जातियों का विवरण अपनी पुस्तक में दिया है। विशेष विस्तार के लिये वह ग्रंथ द्रष्टव्य है।

२

संप्रदाय के पुराने सिद्ध

ह ठ यो ग प्र दी पि का के आरंभ में ही नाथपंथ के अनेक सिद्धयोगियों के नाम दिए हुए हैं। विश्वास किया जाता है कि सिद्ध लोग आज भी जीवित हैं। ह ठ यो ग प्र दी पि का की सूची में जिन सिद्धों के नाम हैं वे ऐसे ही हैं जो कालदण्ड को खंडित करके ब्रह्माण्ड में विचर रहे हैं। नाम इस प्रकार हैं [१] :—

आदिनाथ, मत्स्येंद्रनाथ, सारदानंद, भैरव, चौरंगी, मीननाथ, गोरक्षनाथ, विरूपाक्ष, विलेशय, मंथानभैरव, सिद्धबोध, कन्हड़ीनाथ, कोरंटकनाथ, सुरानंद, सिद्धपाद, चर्पटीनाथ, कारोरीनाथ, पूज्यपाद, नित्यनाथ, निरंजननाथ, कापालिनाथ, विंदुनाथ, काकचण्डीश्वर, मयनाथ, अक्षयनाथ, प्रभुदेव, घोड़ाचूलीनाथ, टिण्टिणीनाथ, भल्लरी नाथ नागबोध, और खण्डकापालिका। इनमें से अनेक सिद्धों के नाम-कोई अनुश्रुति शेष नहीं रह गई है। कुछ के नाम तान्त्रिकों, योगियों और निर्गुणिया सन्तों की परंपरा में बचे हुए हैं और कुछ की अभिन्नता सहजयानी और वज्रयानी सिद्धों से स्थापित की जा सकती है। कुछ सिद्धों के विषय में करामाती कहानियाँ प्रचलित हैं पर उनका ऐतिहासिक मूल्य बहुत अधिक नहीं है।

सबसे आदि में नव मूलनाथ हुए हैं जिन्होंने संप्रदाय का प्रवर्तन किया था—ऐसी प्रसिद्धि है। पर ये नौ नाथ कौन कौन थे इसकी कोई सर्वसम्मत परंपरा बची नहीं है। म हा र्ण व तं त्र में नवनाथों को भिन्न भिन्न दिशाओं में 'न्यास' करने की विधि बताई गई है। उस पर से नवनाथों के नाम इस प्रकार मालूम होते हैं—गोरक्षनाथ, जालंधरनाथ, नागार्जुन, सहस्रार्जुन, दत्तात्रेय, देवदत्त, जड़भरत, आदिनाथ और मत्स्येंद्रनाथ। कापालिकों के बारह शिष्यों की चर्चा पहले ही की जा चुकी है उनमें से कई ऐसे हैं जिनका नाम ह ठ यो ग प्र दी पि का के सिद्धयोगियों से अभिन्न है। [२]

यो गि सं प्र दा या वि ष्कृ ति में [३] नवनारायणों के नवनाथों के रूप में अवतरित होने की कथा दी हुई है। परन्तु उसमें यह नहीं लिखा कि आविर्होत्रनारायण ने किसका अवतार धारण किया था। फिर यह भी नहीं लिखा कि गोरक्षनाथ का अवतार किस नारायण ने लिया था। स्वयं महादेव ने भी एक 'नाथ' के रूप में अवतार धारण अवश्य किया था। ग्रंथकार ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि महादेव जी ने गोरक्षनाथ नामक व्यक्ति को नवनाथों के अवतरित होने के बाद उत्पन्न किया था। तो क्या नवनाथों में गोरक्षनाथ नहीं थे? जिन नारायणों ने अवतार धारण किया था वे इस

---

१. ह ठ यो ग प्र दी पि का

२. देखिए ऊपर पृ० ४

३. यो० सं० आ० : पृ० ११-१४

प्रकार हैं : (यद्यपि ग्रंथ में यह नहीं लिखा कि आविर्होत्रनारायण ने क्या अवतार धारण किया पर भूमिका में [1] गोरक्षनाथ समेत जिन दस आचार्यों का नाम है उसमें नागनाथ का नाम भी है। संभवतः आविर्होत्रनारायण ने नागनाथ का अवतार लिया था।)

१.	कविनारायण	—	मत्स्येंद्रनाथ
२.	करभाजननारायण	—	गाहनिनाथ
३.	अन्तरिक्षनारायण	—	ज्वालेंद्रनाथ (जालंधरनाथ)
४.	प्रबुद्धनारायण	—	करणिपानाथ (कानिपा)
५.	आविर्होत्रनारायण	—	? नागनाथ
६.	पिप्पलायननारायण	—	चर्पटनाथ (चर्पटी)
७.	चमसनारायण	—	रेवानाथ
८.	हरिनारायण	—	भर्तृनाथ (भरथरी)
९.	द्रुमिलनारायण	—	गोपीचद्रनाथ

इन आठ नाथों के साथ आदिनाथ (महादेव) का नाम जोड़ लेने से संख्या नौ होगी। गोरक्षनाथ दसवें नाथ हुए। महार्णव तंत्र में जड़भरत का नाम नव नाथों में है परन्तु योगिसंप्रदायाविष्कृति उन्हें नौ नाथों से अलग मानती है। एक और नाथों की सूची है जो इससे भिन्न है परन्तु गोरक्षनाथ का नाम उसमें भी नहीं आता। यह सूची सुधाकरचंद्रिका [2] से ली गई है। इसके अनुसार नव नाथ ये हैं :

१.	एकनाथ	४.	उदयनाथ	७.	संतोषनाथ
२.	आदिनाथ	५.	दण्डनाथ	८.	कूर्मनाथ
३.	मत्स्येंद्रनाथ	६.	सत्यनाथ	९.	जालंधरनाथ

नेपाल की परंपरा में एकदम भिन्न नाम गिनाए गए हैं। वे इस प्रकार हैं [3] :—

१.	प्रकाश	४.	ज्ञान	७.	स्वभा
२.	विमर्श	५.	सत्य	८.	प्रतिभा
३.	आनंद	६.	पूर्ण	९.	सुभग

इन सूचियों में गोरक्षनाथ का नाम न आने का कारण स्पष्ट है। गोरखपंथी लोगों का विश्वास है कि इन नौ नाथों की उत्पत्ति श्री गोरखनाथ (जिन्हें श्री नाथ भी कहते हैं) से हुई है। ये गोरख के ही नव-विध अवतार हैं। गोरखपंथियों का सिद्धान्त है कि गोरख ही भिन्न भिन्न समय में अवतार लेकर भिन्न भिन्न नाथान्तनाम से अवतरित हुए हैं और गोरख ही अनादि अनन्त पुरुष हैं। उन्हीं की इच्छा से

१. यो० सं० आः पृ० ७
२. सु० चं०: पृ० २४१
३. नेपाल कैटलाग, द्वितीय भागः पृ० १४६

ब्रह्मा विष्णु महादेव आदि हुए हैं।[1] योगिसंप्रदायाविष्कृति में शिव के गोरक्षरूप धारण करने के विषय में यह मनोरंजक कथा दी हुई है:—यह प्रवाद परंपरा से योगियों में प्रचलित है कि महादेव को वश करने की इच्छा से प्रकृति देवी ने एक बार घोर तप किया था। इसलिये देवी का मान रखने और अपने को बचाने के हेतु से महादेवजी ने स्वयं गोरक्ष नाम से प्रसिद्ध कृत्रिम पुतले महादेव का उससे विवाह किया। कभी रहस्य खुलने पर देवी ने फिर इसको वश करने का उद्योग किया, पर विफल हुई। 'पश्चिम दिशा से आई भवानी, गोरख छलने आई जियो।'—इत्यादि आख्यान से यह वृत्त आजतक गाया जाता है।[2]

इन सभी सूचियों में सर्वसाधारण नाम इस प्रकार हैं—आदिनाथ, मत्स्येंद्रनाथ, जालंधरनाथ और गोरक्षनाथ। ये नाम तांत्रिक सिद्धों में भी परिचित हैं और तिब्बती परंपरा के सहजयानी बौद्ध सिद्धों में भी। ललितासहस्रनाम[3] में तीन प्रकार के गुरु बताए गए हैं—दिव्य, सिद्ध और मानव। तारारहस्य[4] में दो प्रकार के गुरुओं का उल्लेख है, दिव्य और मानव। प्रथम श्रेणी में चार हैं और द्वितीय श्रेणी में आठ। मानव दिव्यगुरु हैं—ऊर्ध्वकेशानंदनाथ, व्योमकेशानंदनाथ, नीलकंठानंद नाथ और वृषध्वजानन्दनाथ। मानवगुरु ये हैं—

१.	वशिष्ठ	५.	विरूपाक्ष
२.	मीननाथ	६.	महेश्वर
३.	हरिनाथ	७.	सुख
४.	कुलेश्वर	८.	पारिजात

इनमें केवल मीननाथ नाम नाथपंथियों में परिचित है। किन्तु अन्यान्य तंत्रों में मानव गुरुओं के जो नाम गिनाए गए हैं उनमें कई नाथ सिद्धों के नाम हैं। कौलावली तंत्र[5] के अनुसार बारह मानव गुरु ये हैं:—

१.	विमल	५.	गोरक्ष	९.	विघ्नेश्वर
२.	कुशार	६.	भोजदेव	१०.	हुताशन
३.	भीमसेन	७.	मूलदेव	११.	समरानंद
४.	मीन	८.	रंतिदेव	१२.	संतोष

---

१. सु० चं० : पृ० २४१

२. यो० सं० आ० : पृ० १३

३. ल० स० ना० : पृ० १५

४. ता० र० : पृ० ११५

५. विमलः कुशारश्चैव भीमसेनः सुसाधकः।
मीनो गोरक्षकश्चैव, भोजदेव प्रकीर्तितः॥
मूलदेव रन्तिदेवो, विघ्नेश्वर हुताशनो।
समरानंदसन्तोषौ, मानवौघाः प्रकीर्तिताः॥ कौ० तं० : पृ० ७६

लगभग ये ही नाम श्या मा र ह स्य[1] में भी दिये हैं। श्या मा र ह स्य के नाम इस प्रकार हैं :—

१.	विमल	६.	गोरक्ष	११.	विघ्नेश्वर
२.	कृशर	७.	भोजदेव	१२.	हुताशन
३.	भीमसेन	८.	प्रजापति	१३.	संतोष
४	सुधाकर	९.	कुलदेव	१४.	समयानंद
५.	मीन	१०.	वृन्तिदेव		

इन दोनों सूचियों में नाममात्र का भेद है। पहली सूची में सुधाकर और प्रजापति के नाम नहीं हैं। 'भीमसेन सुसाधकः' का 'सुसाधकः' शब्द मैंने विशेषण मान लिया है। ऐसा जान पड़ता है कि परवर्ती सूची में गलती से 'सुसाधक' का 'सुधाकर' हो गया है। और 'प्रकीर्तितः' का 'प्रजापतिः' हो गया है। जो हो, इनमें गोरक्षनाथ, मीननाथ, और संतोषनाथ तथा भीमनाथ नाथमतावलम्बियों के सुपरिचित हैं। इस प्रकार मीननाथ, गोरक्षनाथ आदि का अनेक परंपरा के सिद्धों में परिगणित होना उनके प्रभाव और प्राचीनत्व को सूचित करता है। एसियाटिक सोसायटी की लाइब्रेरी में एक ताल पत्र की पोथी है जिसका नंबर ४८/३४—अक्षर बंगला और लिपिकाल लक्ष्मण सं० ३८८ दिया है। ग्रन्थकार कविशेखराचार्य ज्योतिरीश्वर हैं जो मिथिला के राजा हरिसिंह देव (सन् १३००-१३२१ ई०) के सभासद् थे। इस पोथी का नाम व र्ण र त्ना क र है। इस पोथी में चौरासी नाथ सिद्धों की तालिका दी हुई है। यद्यपि ग्रंथकार उनकी संख्या चौरासी बताता है तथापि वास्तविक संख्या ७६ ही है।[2] लेखक के प्रमादवश शायद आठ नाम छूट गए हैं। इन ७६ नामों में अनेक पूर्वपरिचित हैं पर नये नाम ही अधिक हैं। तिब्बती परंपरा के चौरासी सहजयानी सिद्धों से इन में के कई सिद्ध अभिन्न हैं। दोनों सूचियों को आस पास रखकर देखने से स्पष्ट मालूम होता है कि नाथ पंथियों और सहजयानियों के अनेक सिद्ध उभयसाधारण हैं। नीचे दोनों सूचियां दी गई हैं। पहली व र्ण र त्ना क र के नाथ सिद्धों की है और दूसरी महापंडित श्री राहुल सांकृत्यायन की संगृहीत वज्रयानियों की है[3]:—

संख्या	नाथ सिद्ध	संख्या	सहजयानी सिद्ध	विशेष
१	मीननाथ	१	लूहिपा	
२	गोरक्षनाथ	२	लीलापा	

१. विमलकृशरश्चैव भीमसेनः सुधाकरः ।
मीनो गोरक्षकश्चैव, भोजदेवः प्रजापतिः ॥
कुलदेवो वृन्तिदेवो, विघ्नेश्वर हुताशनो ।
संतोषः समयानंदः पान्तु मां मानवाः सदा ॥ श्या० र० : पृ० २४

२. बौ० गा० दो०: भूमिका पृ० ३६

३. गं गा—पु रा त त्वां कः पौष माघ १९८९ पृ० २२१—२२४

सं०	नाथ सिद्ध	सं०	सहजयानी सिद्ध	विशेष
३	चौरंगीनाथ	३	विरूपा	नाथ सिद्ध (=ना० सि०)
४	चामरीनाथ	४	डोम्भीपा	
५	तंतिपा	५	शबरीपा	ना० सि० ४७ से तु०
६	हालिपा	६	सरहपा	
७	केदारिपा	७	कंकालीपा	
८	धोंगपा	८	मीनपा	ना० सि० १ से तु०
९	दारिपा	९	गोरक्षपा	ना० सि० ३
१०	विरूपा	१०	चोरंगीपा	ना० सि० ३
११	कपाली	११	वीणापा	
१२	कुमारी	१२	शान्तिपा	ना० सि० ४४ से तु०
१३	कान्ह	१३	तन्तिपा	ना० सि० ५ से तु०
१४	कनखल	१४	चमरिपा	
१५	मेखल	१५	खड्गपा	
१६	उन्मन	१६	नागार्जुन	ना० सि० २२
१७	काण्डलि	१७	कराहपा	ना० सि० १३ से तु०
१८	धोबी	१८	कर्णरिपा (आर्यदेव)	
१९	जालधर	१९	थगनपा	ना० सि० ४८ से तु०
२०	टोंगी	२०	नारोपा	
२१	मवह	२१	शलिपा (शीलपा, शृगाली पाद ?	ना० सि० ५५ से तु०

सं०	नाथ सिद्ध	सं०	शहजयानी सिद्ध	विशेष
२२	नागार्जुन	२२	तिलोपा	
२३	दौली	२३	छत्रपा	
२४	भिषाल	२४	भद्रपा	ना० सि० ३७ से तु०
२५	अचिति	२५	दोखंधिपा (द्विखंडिपा)	
२६	चम्पक	२६	अजोगिपा	
२७	ढेण्टस	२७	कालपा	
२८	भुम्बरी	२८	धोम्भिपा	ना० सि० १८ से तु०
२९	बाकलि	२९	कंकणपा	
३०	तुजी	३०	कमरिपा (कंबलपा)	ना० सि० ३४ से तु०
३१	चर्पटी	३१	डेंगिपा	ना० सि० ८ ?
३२	भादे	३२	भदेपा	ना० सि० ३२ से तु०
३३	चाँदन	३३	तंधेपा (तंतिपा)	
३४	कामरी	३४	कुकुरिपा	
३५	करवत	३५	कुचिपा (कुसूलिपा)	
३६	धर्मपापतंग	३६	धर्मपा	ना० सि० ३६
३७	भद्र	३७	महीपा (महिलपा)	
३८	पातलिभद्र	३८	अचिन्तिपा	ना० सि० २५ से तु०
३९	पलिहिह	३९	भलहपा (भवपा)	
४०	भानु	४०	नलिनपा	
४१	मीन	४१	भूसुकपा	

सं०	नाथ सिद्ध	सं०	सहजयानी सिद्ध	विशेष
४२	निर्दय	४२	इन्द्रभूति	
४३	सबर	४३	मेकोपा	
४४		४४	कुड़ालिपा (कुद्दलिपा)	ना० सि० ७ से तु०
४५	भर्तृहरि	४५	कमरिपा (कम्मरिपा)	ना० सि० १२ से तु०
४६	भीषण	४६	जालंधरपा (जालधारक)	ना० सि० १९ से तु०
४७	भटी	४७	राहुलपा	
४८	गगनपा	४८	धर्मरिपा (धर्मरि)	
४९	गमार	४९	धोकरिपा	
५०	मेनुरा	५०	मेदनीपा (हालीपा?)	ना० सि० ६ से तु०
५१	कुमारी	५१	पंकजपा	
५२	जीवन	५२	घंटा (वज्रघंटा) पा	
५३	अघोसाधव	५३	जोगीपा (अजोगिपा)	
५४	गिरिवर	५४	चेलुकपा	
५५	सियारी	५५	गुंडरिपा (गोरुरपा)	
५६	नागवालि	५६	लुंचकपा	
५७	विभवत्	५७	निर्गुणपा	
५८	सारंग	५८	जयानन्त	
५९	विविकिधज	५९	चर्पटीपा (पचरीपा)	ना० सि० ३१ से तु०
६०	मगरधज	६०	चम्पकपा	ना० सि० २६
६१	अचित	६१	भिखनपा	ना० सि० ४६ से तु०
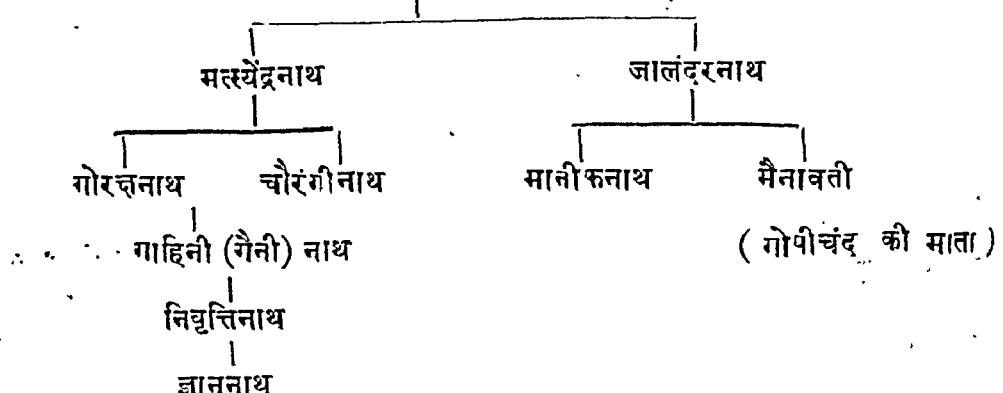
सं०	नाथ सिद्ध	सं०	सहजयानी सिद्ध	विशेष
६२	विचित	६२	भलिपा	ना० सि० ६६ से तु०
६३	नेचक	६३		ना० सि० ५१ से तु०
६४	चाटल	६४	चवरि, (जवरि) अज-पालिपा	ना० सि० ४ से तु०
६५	नाचन	६५	मणिभद्रा (योगिनी)	ना० सि० ७४ से तु०
६६	भीलो	६६	मेखलापा (योगिनी)	ना० सि० १५ से तु०
६७	पाहिल	६७	कनखलापा (योगिनी)	ना० सि० १४ से तु०
६८	पासल	६८	कलकलपा	
६९	कमल-कंगारि	६९	कन्ताली (कन्थाली) पा	
७०	चिपिल	७०	धहुलि (रि)पा (दबड़ीपा ?)	
७१	गोविंद	७१	उधनि (उधलि) पा	
७२	भीम	७२	कपाल (कमल) पा	ना० सि० ६९ से तु०
७३	भैरव	७३	किलपा	
७४	भद्र	७४	सागरपा	
७५	भमरी	७५	सर्वभक्षपा	
७६	भुरुकुटी	७६	नागबोधिपा	ना० सि० ५६ से तु०
७७		७७	दारिकपा	ना० सि० ९ से तु०
७८		७८	पुतुलिपा	
७९		७९	पनहपा	
८०		८०	कोकालिपा	
८१		८१	अनंगपा	

सं०	नाथ सिद्ध	सं०	सहजयानी सिद्ध	विशेष
८२		८२	लक्ष्मींकरा	
८३		८३	समुद्पा	
८४		८४	भलि (व्यालि) पा	

श्री ज्ञा ने श्व र च रि त्र में पं० लक्षण रामचंद्र पांगारकर ने ज्ञाननाथ तक की गुरुपरम्परा इस प्रकार बताई है—

इस प्रकार यदि नवनाथों, कापालिकों, ज्ञाननाथ तक के गुरु सिद्धों और व र्ण र त्ना क र के चौरासी नाथ-सिद्धों को नाथ परंपरा में मान लिया जाय तो चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ होने के पूर्व लगभग सवा सौ सिद्धों के नाम उपलब्ध होते हैं. नीचे इनकी सूची दी जा रही है। इनमें तंत्र ग्रंथों के स्वतंत्र गुरुओं का उल्लेख नहीं है क्योंकि यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वे गुरु नाथ-सिद्ध होंगे ही। फिर नेपाली परंपरा के नाथ शिव के आनंद और शक्ति के प्रतीक से जान पड़ते हैं, व्यक्ति विशेष नहीं। आगे उन पर विचार करने का अवसर आएगा। यद्यपि नीचे की सूची में १३७ सिद्धों के नाम हैं पर उनमें से कई अभिन्न से जान पड़ते हैं। कान्ह, कन्हड़ी, करणिपा, काणफीनाथ आदि एक ही सिद्ध के नाम के उच्चारण भेद से भिन्न रूप हैं। ह ठ यो ग प्र दी पि का के ढिण्ढिणी, सहजयानी सिद्ध ढेण्ढण और व र्ण र त्ना क र के ढेण्टस एक ही सिद्ध हैं। व र्ण र त्ना क र की मेनुरा, मैना या मयनामती का ही नामान्तर जान पड़ता है। कालभैरवनाथ और भैरवनाथ एक ही हो सकते हैं और नागनाथ और नागार्जुन तथा नागबोध और नागबालि की विभिन्नता भी संदेह का विषय है। जहां संदेह ज्यादा है वहां हमने

अलग से नाम गिनाना ही उचित समझा परन्तु इन सिद्धों में सवा सौ के करीब ऐतिहासिक व्यक्ति अवश्य हैं और वे तेरहवीं शताब्दी (ईसवी सन् की) के समाप्त होने के पूर्व के ही हैं। स्पष्ट ही संप्रदाय के सर्वमान्य आचार्य मत्स्येंद्रनाथ, जालंधरनाथ, गोरक्षनाथ और कानिपा हैं क्योंकि इनका नाम सब ग्रंथों में पाया जाता है। आगे इन पर विचार करके ही अन्य सिद्धों पर विचार किया जायगा।

सूची में निम्नलिखित संकेत व्यवहृत हुए हैं:

वर्णरत्नाकर=व० गोरक्षसिद्धान्त संग्रह=गो०
महार्णव तंत्र=म० योगिसंप्रदायाविष्कृति=यो०
हठयोगप्रदीपिका=ह० सुधाकरचंद्रिका=सु०
ज्ञानेश्वरचरित्र=ज्ञा०

सं०	नाम	आधार ग्रंथ	सं०	नाम	आधार ग्रंथ
१	अक्षय	ह०	१४	कमलकंगारि	व०
२	अघोसाधव	व०	१५	कंथाधारी	ह०
३	अचित	व०	१६	कन्हड़ी	,,
४	अजपानाथ	यो०	१७	करवत	व०
५	अजयनाथ	,,	१८	काणेरी	ह०, गो०
६	अतिकाल	का०	१९	काण्डालि	व०
७	अनादिनाथ	का०	२०	कान्ह (करणिपा)	व० (यो०),ज्ञा०
८	अवद्य	,,	२१	कामरी	व०
९	आदिनाथ	सब	२२	कापालि	ह०
१०	उदयनाथ	सु०, गो०	२३	काल	का०
११	उनमन	व०	२४	काल भैरवनाथ	,,
१२	एकनाथ	सु०, गो०	२५	कुभारी	व०
१३	कनखल	व०	२६	कूर्मनाथ	सु०, गो०

सं०	नाम	आधार ग्रंथ	सं०	नाम	आधार ग्रंथ
२७	केदारिपा	व०	४६	ज (जा) लंधर	सब
२८	कोरंटक	ह०	४७	जीवन	व०
२९	खण्ड कापालिक	ह०	४८	ज्ञाननाथ	ज्ञा०
३०	गगनपा	व०	४९	टोंगी	व०
३१	गमार	व०	५०	ढिण्ढणी	ह०
३२	गिरिवर	,,	५१	ढेण्टस	व०
३३	गाहिनी नाथ	ज्ञा०, यो०	५२	तंतिपा	व०
३४	गोपीचन्द्रनाथ	यो०, गो०	५३	तारकनाथ	यो०
३५	गोरक्षनाथ	सब	५४	तुजी	व०
३६	गोविंद	व०	५५	दण्डनाथ	सु०, गो
३७	घोड़ा चूली	ह०	५६	दत्तात्रेय	म०
३८	चर्पट	का०,ह०,व०,गो०	५७	दारिपा	व०
३९	चाटल	व०	५८	देवदत्त	म०
४०	चम्पक	,,	५९	दौली	व०
४१	चाँदन	,,	६०	धर्मपा रतंग	,,
४२	चामरी	,,	६१	धोंगपा	,,
४३	चिपिल	,,	६२	धोरंग (दूरंगम)	यो०
४४	चौरंगी	ह०, व०, ज्ञा०	६३	धोबी	व०
४५	जड़भरत	म०, का०	६४	नागनाथ	यो०

सं०	नाम	आधार ग्रंथ	सं०	नाम	आधार ग्रंथ
६५	नागवालि	व०	८४	भद्र (२)	व०
६६	नागबोध	ह०	८५	भमरी	"
६७	नागार्जुन	का०, म०, व०	८६	भर्तृहरि	व०, यो०
६८	नाचन	व०	८७	भवनार्जिः	गो०
६९	नित्यनाथ	ह०	८८	भल्लटि	ह०
७०	निरंजन	ह०, यो०	८९	भादे	व०
७१	निर्दय	व०	९०	भानु	"
७२	निवृत्तिनाथ	ज्ञा०	९१	भिषाल	"
७३	नीमनाथ	यो०	९२	भीमनाथ	का०, व०
७४	मेचक	व०	९३	भीषण	व०
७५	पलिहिह	"	९४	भीलो	वा०
७६	पातलीभद्र	"	९५	भुरुकुटी	व०
७७	पासल	"	९६	भूतनाथ	का०
७८	पूज्यपाद	ह०	९७	भूम्बरी	व०
७९	प्रभुदेव	"	९८	भैरव	का०, व०
८०	बटुक	का०	९९	मगरधन	व०
८१	बाकलि	व०	१००	मत्स्येंद्रनाथ	व०के सिवा
८२	भटी	व०	१०१	मन्थानभैरव	ह०
८३	भद्र (१)	"	१०२	मय	ह०

सं०	नाम	आधार ग्रंथ	सं०	नाम	आधार ग्रंथ
१०३	मवह	व०	१२१	वैराग्य	का० -
१०४	मलयार्जुन	का०	१२२	शंभुनाथ	यो०
१०५	महाकाल	"	१२३	श्रीकंठ	का०
१०६	माणिकनाथ	यो०	१२४	सत्यनाथ	का०, सु०, गो०
१०७	मालीपाव	गो०	१२५	सन्तोषनाथ	सु०, गो०
१०८	मीन	ह०,व०,यो०,गो०	१२६	सवर	व०
१०९	मेखल	व०	१२७	सहस्रार्जुन	म०
११०	मेनुरा (मयनामती)	व० (ज्ञा०)	१२८	सारदानंद	ह०
१११	रेवानाथ	यो०	१२९	सान्ति	व०
११२	विकराल	का०	१३०	सारंग	व०
११३	विचित	व०	१३१	सिद्धपाद	ह०
११४	विंदुनाथ	ह०, यो०	१३२	सिद्धबोध	ह०
११५	विभवत्	व०	१३३	सियारी	व०
११६	विरूपा	व०	१३४	सुरानंद	ह०
११७	विरूपाक्ष	ह०	१३५	सूर्यनाथ	यो०
११८	विविगधज	व०	१३६	हरिश्चन्द्र	का०
११९	विलेशय	ह०, यो०	१३७	हालिपा	व०, गो०
१२०	वीरनाथ	का०			

कभी कभी परवर्ती ग्रंथों में इनके अतिरिक्त अन्य नाम भी आते हैं जो चौरासी सिद्धों में गिने गए हैं। प्रा ण सं ग ली नामक सिख ग्रंथ में गुरु नानक के साथ चौरासी

सिद्धों के साथ साक्षात्कार का प्रसंग है। इन चौरासी सिद्धों में कई प्रकार के सिद्ध थे। कुछ सुरति-सिद्ध थे कुछ निरति-सिद्ध और कुछ कनक-सिद्ध। कुछ सिद्ध क्रोधी और तामसिक प्रकृति के भी थे। इस पुस्तक से निम्नलिखित संतों का पता लगता है—

१. परबत सिद्ध (पृ० १५४)
२ ईश्वरनाथ (पृ० १५५)
३. चरपटनाथ (पृ० १५५)
४. घुघूनाथ (पृ० १५६)
५. चंपानाथ (पृ० १५६)
६. खिंथड़नाथ (कंथड़ि ?) (पृ० १६२)
७. झंगरनाथ (पृ० १६१)
८ धूर्मनाथ (ऊरमनाथ) (पृ० १६५)
९. धंगरनाथ (पृ० १६७)
१०. मंगलनाथ (पृ० १६९)
११. प्राणनाथ (पृ० १६९)

परवर्ती ग्रंथों में सिद्धों के नाम इतने विकृत हुए हैं कि कभी कभी भ्रम होता है कि दूसरा कोई सिद्ध है। इस प्रकार नागार्जुन नागाअरजन्द हो गए हैं, नेमिनाथ नीमनाथ बन गए हैं और कंथाधारी खिंथड़ हो गए हैं। संप्रदाय प्रवर्तक सिद्धों में कुछ तो पुराने हैं। कुछ नए हैं और कुछ ऐसे भी हैं जिनका मूल नाम विकृत हो कर कुछ का कुछ हो गया है।

—:o:—

३

मत्स्येंद्रनाथ कौन थे ?

नाथ-परंपरा में आदिनाथ के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण आचार्य मत्स्येंद्रनाथ ही हैं। हमने यह पहले देखा है कि आदिनाथ शिव का ही नामान्तर है। सो, मानव गुरुओं में मत्स्येंद्रनाथ ही इस परम्परा के सर्वप्रथम आचार्य हैं। ये गोरखनाथ के गुरु थे। नेपाली अनुश्रुति के अनुसार ये अवलोकितेश्वर के अवतार थे। नाथ-परंपरा के आदि गुरु माने जाते हैं और कौलाचार के वे सिद्ध पुरुष हैं। काश्मीर के शैवागमों में भी इनका नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। वस्तुतः मध्ययुग के एक ऐसे युगसंधिकाल में मत्स्येंद्र का आविर्भाव हुआ था कि अनेक साधन मार्गों के ये प्रवर्तयिता मान लिए गए हैं। सारे भारतवर्ष में उनके नाम की सैकड़ों दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। प्रायः हर दन्तकथा में वे अपने प्रसिद्ध शिष्य गोरक्षनाथ (गोरखनाथ) के साथ जड़ित हैं। यह कहना कठिन है कि इन दन्तकथाओं में ऐतिहासिक तथ्य कितना है, परंतु नानामूलों से जो कुछ भी ऐतिहासिक तथ्य पाया जाता है उनसे दन्तकथाओं की यथार्थता बहुत दूर तक प्रमाणित हो जाती है। इसीलिये उनके काल, साधन-मार्ग और विचार-परंपरा के ज्ञान के लिये दन्तकथाओं पर थोड़ा-बहुत निर्भर किया जा सकता है।

प्रथम प्रश्न इनके नाम का है। योगि-संप्रदाय में 'मछन्दरनाथ' नाम प्रसिद्ध है। परवर्ती संस्कृत ग्रंथों में इसका शुद्ध रूप मत्स्येंद्रनाथ दिया हुआ है। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि साधारण योगी मत्स्येंद्रनाथ की अपेक्षा 'मछन्दरनाथ' नाम को ही अधिक पसंद करते हैं। श्री चंद्रनाथ योगी जैसे सुधारक मनोवृत्ति के महात्मा को बड़े दुःख के साथ कहना पड़ा है कि मत्स्येंद्रनाथ को मच्छन्दरनाथ और गोरक्ष नाथ को गोरखनाथ कहना योगि संप्रदाय के घोर पतन का सबूत है (पृ० ४४८-९)। परन्तु बहुत प्राचीन पुस्तकों में इनके इतने नाम पाये गए हैं कि इनके प्राकृत नाम की प्राचीनता निस्सन्दिग्ध रूप से प्रकट होती है और यह बात सन्दिग्ध हो जाती है कि परवर्ती ग्रंथों में व्यवहृत मत्स्येंद्रनाथ नाम ही शुद्ध और वास्तविक है। मत्स्येंद्रनाथ द्वारा रचित कई पुस्तकें नेपाल की दरबार लाइब्रेरी में सुरक्षित हैं। उनमें एक का नाम है कौलज्ञाननिर्णय। इसकी लिपि को देखकर स्वर्गीय महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री ने अनुमान किया था कि वह ईसवी सन् की नवीं शताब्दी का लिखा हुआ है।[१] हाल ही में कलकत्ता विश्वविद्यालय के (अब विश्वभारती, शान्तिनिकेतन के) अध्यापक डा० प्रबोधचंद्र बागची ने उस पुस्तक का तथा मत्स्येंद्रनाथ की लिखी अन्य चार पुस्तकों का बहुत सुन्दर संपादित संस्करण प्रकाशित कराया है। बाकी चार पुस्तकें ये हैं—अकुलवीरतंत्र—ए, अकुलवीरतंत्र—बी, कुलानन्द और ज्ञानकारिका। डा० बागची के अनुसंधान से ज्ञात हुआ

---

१. नेपाल कैटलाग: २ य भाग, पृ० XIX

है कि वस्तुतः इन ग्रंथों की हस्तलिपि ईसवी सन की ग्यारहवीं शताब्दी के मध्यभाग की है, नवीं शताब्दी की नहीं। इन पुस्तकों की पुष्पिका में आचार्य का नाम कई प्रकार से लिखा गया है। नीचे वे दिये जा रहे हैं—

कौलज्ञाननिर्णय में—मच्छघ्नपाद, मच्छेन्द्रपाद, मत्स्येंद्रपाद और मीनपाद

अकुलवीरतंत्र में — (ए) मीनपाद

" (बी) मच्छेन्दपाद

कुलानंद में — मत्स्येंद्र

ज्ञानकारिका में — मच्छिन्द्रनाथपाद

मच्छेन्द्र, मच्छिन्द्र और मच्छेन्द आदि नाम मत्स्येंद्रनाथ के अपभ्रंश रूप हो सकते हैं पर 'मच्छघ्न' शब्द मत्स्येंद्र का प्राकृत रूप किसी प्रकार नहीं हो सकता। इस नाम पर से हरप्रसाद शास्त्री का अनुमान है कि मत्स्येंद्रनाथ मछली मारने वाली कैवर्त जाति में उत्पन्न हुये थे। कौलज्ञाननिर्णय से भी मत्स्यघ्न नाम का समर्थन होता है। इस ग्रंथ से पता चलता है कि मत्स्येंद्रनाथ थे तो ब्राह्मण परन्तु एक विशेष कारण से उनका नाम 'मत्स्यघ्न' पड़ गया। कार्तिकेय ने कुलागम शास्त्र को चुरा कर समुद्र में फेंक दिया था तब उस शास्त्र का उद्धार करने के लिये स्वयं भैरव अर्थात् शिव ने मत्स्येंद्रनाथ का अवतार धारण कर समुद्र में घुसकर उस शास्त्र का भक्षण करने वाले मत्स्य का उदर विदीर्ण करके शास्त्र का उद्धार किया। इसी कारण से वे 'मत्स्यघ्न' कहलाए।

यह ध्यान देने की बात है कि अभिनवगुप्तपाद ने भी 'मच्छन्द' नाम का ही प्रयोग किया है और रूपकात्मक अर्थ समझ कर उसकी व्याख्या की है। इनके मत से आतान-वितान-वृत्त्यात्मक जाल को छिन्न करने के कारण उनका नाम 'मच्छन्द' पड़ा।[1] और तंत्रालोक के टीकाकार जयद्रथ ने भी इसी प्रकार का एक श्लोक उद्धृत किया है जिसके अनुसार 'मच्छ' चपल चित्तवृत्तियों को कहते हैं। ऐसी वृत्तियों को छेदन करने के कारण ही वे 'मच्छन्द' कहलाए।[2] कबीर-संप्रदाय में अब भी 'मच्छ' शब्द मन अर्थात् चपल चित्तवृत्तियों को कहते हैं।[3] यह परंपरा अभिनवगुप्त तक जाती है। उसके पहले भी ऐसी परंपरा नहीं रही होगी यह नहीं कहा जा सकता। प्राचीनतर बौद्ध सिद्धों के पदों से इस प्रकार के प्रमाण संग्रह किए जा सके हैं कि 'मत्स्य' प्रज्ञा का वाचक था। इस प्रकार मत्स्येंद्रनाथ की जीवितावस्था में ही, मच्छघ्न के प्रतीकात्मक अर्थ में उनका कहा जाना असंगत कल्पना नहीं है।

---

१. रागारुणं ग्रंथिबिलावकीर्णं यो जालमातान वितान वृत्ति —
कलोम्भितं बाह्यपथे चकार स्तान्मे स मच्छन्दविभुः प्रसन्नः। १.१७
—तंत्रालोक : प्रथम भाग पृ० २५

२. मच्छाः पाशाः समाख्याताश्चपलाश्चित्तवृत्तयः।
छेदितास्तु यदा तेन मच्छन्दस्तेन कीर्तितः॥

३. विचारदास की टीका : पृ० ४०

एक और प्रश्न उठता है कि मत्स्येंद्रनाथ और मीननाथ एक ही व्यक्ति हैं या भिन्न भिन्न। *हठयोगप्रदीपिका* में मीननाथ को मत्स्येंद्रनाथ से पृथक व्यक्ति बताया गया है। डा० बागची कहते हैं कि यह बात बाद की कल्पना जान पड़ती है। *कौलज्ञाननिर्णय* में कई जगह मीननाथ का नाम आने से उन्हें इस विषय में कोई संदेह नहीं कि मत्स्येंद्रनाथ और मीननाथ एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं। सांप्रदायिक अनुश्रुतियों के अनुसार मीननाथ मत्स्येंद्रनाथ के पुत्र थे।[१] डा० बागची इस मत को परवर्ती कल्पना मानते हैं। परन्तु सिद्धों की सूची देखने से जान पड़ता है कि यह परंपरा काफी पुरानी है। तिब्बती अनुश्रुति के अनुसार मीननाथ मत्स्येंद्रनाथ के पिता थे।[२] इस प्रकार यह एक विचित्र उलझन है। (१) *कौलज्ञाननिर्णय* के अनुसार मीननाथ मत्स्येंद्रनाथ से अभिन्न हैं (२) सांप्रदायिक अनुश्रुति में वे मत्स्येंद्रनाथ के पुत्र हैं, और (३) तिब्बती परंपरा में वह स्वयं मत्स्येंद्रनाथ के ही पिता हैं, फिर (४) नेपाल में प्रचलित विश्वास के अनुसार वे मत्स्येंद्रनाथ के छोटे भाई हैं !!

वर्णरत्नाकर में प्रदत्त नाथ सिद्धों की सूची काफी पुरानी है। इसमें प्रथम सिद्ध का नाम मीननाथ है और ४१ वें सिद्ध का नाम मीन है। प्रथम सिद्ध मीननाथ निश्चय ही मत्स्येंद्रनाथ हैं। इकतालीसवें मीन कोई दूसरे हैं जो मीननाथ की शिष्य परंपरा में पड़ने के कारण उनके पुत्र मान लिये गये होंगे। परन्तु *वर्णरत्नाकर* से स्पष्ट रूप से दो बातें मालूम होती हैं— (१) यह कि मीननाथ और मत्स्येंद्रनाथ एक ही प्रथम नाथ सिद्ध के दो नाम हैं और (२) यह कि *हठयोगप्रदीपिका* में मत्स्येंद्र के अतिरिक्त भी जो एक मीन नाम आता है उसका कारण यह है कि वस्तुतः ही नाथ परंपरा में एक और भी मीन नामधारी सिद्ध हो चुके हैं।

मत्स्येंद्रनाथ और मीननाथ के एक होने का एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण यह है कि *तंत्रालोक* की टीका में जयद्रथ ने दो पुराने श्लोक उद्धृत किए हैं इनमें शिव ने कहा है कि मीननाथ नामक महासिद्ध 'मच्छन्द' ने कामरूप नामक महापीठ में मुझ से योग पाया था।[३] निस्संदेह टीकाकार के मन में *कौलज्ञाननिर्णय* नामक ग्रंथ ही रहा होगा क्योंकि उन्होंने लिखा है कि यह मच्छन्द 'सकुल कुल शास्त्रों के अवतारक रूप में प्रसिद्ध हैं'।[४] यह लक्ष्य करने की बात है कि *कौलज्ञान* की पुष्पिका में बराबर मच्छन्द या मत्स्येंद्रनाथ को *योगिनीकौलज्ञान* का अवतारक बताया गया है।[५]

---

१. यो० सं० आ०: पृ० २२७ और आगे।

२. चौ० गा० दो० : पृ० ४॥≡ ; *गंगा पुरातत्त्वांक* : पृ० २२१

३ भैरव्या भैरवात् प्राप्तं योगं व्याप्य ततः प्रिये।
तत्सकाशात्तु सिद्धेन मीनाख्येन वरानने।
कामरूपे महापीठे मच्छन्देन महात्मना।

—तंत्रालोक टीकाः पृ० २४

४. स च (मच्छन्दः) सकलकुलशास्त्रावतारकतया प्रसिद्धः।—वही

५. तु०—त्वावतारितं ज्ञानं कामरूपी त्वया मया

—कौ० ज्ञा० नि० : १६।२१

इस प्रकार यह निर्विवाद है कि प्राचीन काल में मत्स्येंद्रनाथ का नाम ही मीन या मीननाथ माना जाता था।

ये मत्स्येंद्रनाथ कौन थे और किस कुल तथा देश में उत्पन्न हुए थे ? इनके रचित ग्रंथ क्या क्या हैं ? इनका साधन मार्ग क्या था और कैसा था ? इत्यादि प्रश्न सहज-समाधेय नहीं हैं। सारे देश में इनके तथा इनके गुरु भाई जालंधरनाथ और शिष्य गोरक्षनाथ के संबंध में इतनी तरह की दन्तकथाएँ प्रचलित हैं कि उनके आधार पर ऐतिहास को खोज निकालना काफी कठिन है। फिर भी सभी परंपराएँ कुछ बातों में मिलती हैं इसीलिये उन पर से ऐतिहासिक कंकाल का अनुमान हो सकता है।

किसी किसी पंडित ने बौद्ध सहजयानियों के आदि सिद्ध[1] लुईपाद और मत्स्येंद्रनाथ को एक ही व्यक्ति बताने का प्रयत्न किया है। लुई शब्द को लोहित (=रोहित =मत्स्य) शब्द का अपभ्रंश मान कर इस मत की स्थापना की गई है। इस कल्पना का एक और भी कारण यह है कि तिब्बती अनुश्रुति के अनुसार लुईपाद का एक और नाम मत्स्यान्त्राद (= मछली की अँतड़ी खाने वाला) दिया हुआ है।[2] यह नाम मच्छघ्न नाम से मिलता है। इस प्रकार उपर्युक्त कल्पना को बल मिलता है। यदि यह कल्पना सत्य हो तो मत्स्येंद्रनाथ का समय आसानी से मालूम हो सकता है। लुईपाद के एक ग्रंथ में दीपंकर श्री ज्ञान ने सहायता दी थी। ये दीपंकर श्रीज्ञान सन् १०३८ ई० में ५८ वर्ष की उमर में विक्रमशिला से तिब्बत गए थे[2]। अतएव लुईपाद का समय इसीके आस-पास होगा। परन्तु कई कारणों से लुईपाद और मत्स्येंद्रनाथ के एक व्यक्ति होने में संदेह है। हरप्रसाद शास्त्री ने लिखा है कि नेपाल के बौद्ध लोग गोरक्षनाथ पर तो बहुत नाराज हैं पर मत्स्येंद्रनाथ को अवलोकितेश्वर का अवतार मानते हैं। सुप्रसिद्ध तिब्बती ऐतिहासिक तारानाथ ने लिखा है कि गोरक्षनाथ पहले बौद्ध थे। उस समय उनका नाम अनंगवज्र था (यद्यपि शास्त्री जी को कोई विश्वसनीय प्रमाण मिला है कि गोरक्षनाथ का पुराना नाम अनंगवज्र नहीं बल्कि रमणवज्र था।) इसलिये नेपाली बौद्ध उन्हें धर्मत्यागी समझ कर घृणा करते हैं। परन्तु मत्स्येंद्रनाथ पर जब उनकी श्रद्धा है तो मानना पड़ेगा कि वे धर्मत्यागी नहीं हो सकते। शास्त्री जी का अनुमान है कि मत्स्येंद्रनाथ कभी बौद्ध थे ही नहीं, क्योंकि मत्स्येंद्रनाथ का पूर्व नाम मच्छघ्न था अर्थात् वे मछली मारने वाले कैवर्त थे। बौद्धों के स्मृतिग्रंथों में लिखा है कि जो लोग निरन्तर प्राणि-हत्या करते हैं उनको—जैसे जाल फेंकने वाले मल्लाह, कैवर्त आदि को—बौद्धधर्म में दीक्षित नहीं करना चाहिए। इसलिये मच्छघ्ननाथ बौद्ध नहीं हो सकते। वे नाथपंथियों के ही गुरु थे फिर भी नेपाली बौद्धों

१. राहुल जी के मत से सहजयानियों के आदि सिद्ध सरह थे, लुई नहीं।

२. बौ० गा० दो०: पृ० १५

के उपास्य हो सके हैं ।[१] शास्त्रीजी की युक्ति संपूर्ण रूप से ग्राह्य नहीं मालूम होती क्योंकि बौद्ध सिद्धों में कम से कम एक मीनपा ऐसे अवश्य हैं जिनकी जाति मछुआ है ।[२] परन्तु आगे हम जो विचार करने जा रहे हैं उससे इतना निश्चित है कि शास्त्री जी का यह मन्तव्य कि मत्स्येंद्रनाथ कभी बौद्ध थे ही नहीं ठीक है । तिब्बती ऐतिहासिक तारानाथ के अनुसार गोरक्षनाथ पहले बौद्ध तांत्रिक ही थे पर बारहवीं शताब्दी में सेन राजवंश के अंत के साथ वे शिव (ईश्वर) के उपासक हो गए क्योंकि वे मुसलमान विजेताओं का विरोध नहीं करना चाहते थे ।[३]

गोरक्षशतक के दूसरे श्लोक में मीननाथ को अपना गुरु मानकर गोरक्षनाथ ने स्तुति की है । वही श्लोक गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह (पृ० ४०) में विवेकमार्तण्ड का कहकर उद्धृत है । इसमें मीननाथ की स्तुति है । प्रसंग से ऐसा जान पड़ता है कि ये मीननाथ मत्स्येंद्रनाथ ही हैं। इसमें कहा गया है कि जिन्होंने मूलाधारबंध उड्डियानबंध, जालंधरबंध आदि योगाभ्यास से हृदय कमल में निश्चय दीप की ज्योति सरीखी परमात्मा की कला का साक्षात्कार करके युग-कल्प आदि के रूप में चक्कर काटने वाले काल के रहस्यों को तथा समस्त तत्वों को योगाभ्यास से जय कर लिया था और स्वयं ज्ञान और आनंद के महासमुद्र श्री आदिनाथ का स्वरूप हो गए थे उन श्री मीननाथ को प्रणाम है[४] । उसी ग्रंथ में मीननाथ का कहा हुआ एक श्लोक है जिसमे बताया गया है कि योगी लोग जिस शिव की उपासना करते हैं उनके कोपानल से कामदेव जलकर भस्म हो गया था । इस पर से ग्रंथ संग्रहीता ने निष्कर्ष निकाला है कि योगी लोग कामभाव के विरोधी हैं और उनका मत पूर्ण ब्रह्मचर्य पर

---

१. बौ. गा. दो० : पृ० १६

२. राहुल सांकृत्यायन : गं गा, पुरातत्वांक, पृ० २२१

३. (१) गेशिस्टे देस बुधिस्मु ट्रा० इन-इंडिएन, ट्रा० शीफनेर० सेंट पीटर्सबर्ग सन् १८६६, पृ० १७४, २५५, ३२३.

(२) लेवी, ल नेपाल, : पृ० ३५५ और आगे

(३) ग्रियर्सन० इ. रे ए. : पृ० ३२८

४. अन्तर्निश्चलितात्मदीपकलिका स्वाधारबंधादिभि —
यो योगीयुगकल्पकालकलनातत्त्वं च यो गीयते ।
ज्ञानान्मोदमहोदधिः समभवद्यत्रादिनाथं स्वयं
व्यक्ताव्यक्तगुणाधिकं तमनिशं श्री मीननाथंभजे ॥

गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह में यह श्लोक अशुद्ध रूप में उद्धृत है । इसका शुद्ध रूप पं० महीधर शर्मा की पुस्तक में उपलब्ध है। तदनुसार द्वितीय पंक्ति के 'यो गीयते' के स्थान में 'जेगीयते' पाठ होना चाहिए । तृतीय पंक्ति के आरंभ में 'ज्ञानामोदमहोदधिः' होना चाहिये और 'आदिनाथं' के स्थान में 'आदिनाथः' पाठ होना चाहिए (—गो० प०, पृ०, ७) इसका यही शुद्ध रूप गोरक्षशतक में भी मिलता है (ब्रिग्स, पृ० १८४) ।

आधारित है[1]। स्पष्ट ही स्म र दी पि का के ग्रंथकार मीननाथ[2] यह मीननाथ नहीं हो सकते क्यों कि दोनों के प्रतिपाद्य परस्पर-विरुद्ध हैं। वस्तुतः स्म र दी पि का कार कोई दूसरे मीननाथ हैं और नाथ मार्ग से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह ध्यान देने की बात है कि गो र क्ष श त क के टीकाकार लक्ष्मीनारायण भी मत्स्येंद्रनाथ और मीननाथ को एक ही मानते हैं[3]।

नेपाल दरबार लाइब्रेरी में नि त्या ह्नि क ति ल क म् नामक पुस्तक है। इस में एक जगह पचीस कौल सिद्धों के नाम, जाति, जन्मस्थान, चर्यानाम, गुप्तनाम, कीर्तिनाम और उनकी शक्तियों के नाम दिए हुए हैं। डा० बागची ने कौ ल ज्ञा न नि र्ण य की भूमिका में इस सूची को उद्धृत किया है। इस सूची में एक नाम मत्स्येंद्रनाथ भी है। इसके अनुसार मत्स्येंद्रनाथ का विवरण इस प्रकार है—

नाम—विष्णुशर्मा
जाति—ब्राह्मण
जन्मभूमि—वारणा (बंग देश)
चर्यानाम—श्री गौडीशदेव
पूजानाम—श्री पिप्पलीशदेव
गुप्तनाम—श्री भैरवानन्द नाथ

कीर्तिनाम—तीन थे। ये भिन्न-भिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न सिद्धियों को दिखाने से प्राप्त हुए थे। प्रथम कीर्तिनाम वीरानंदनाथ था, पर जब इंद्र से अनुगृहीत हुए तब इन्द्रानंददेव हुआ; फिर जब मर्कट नदी में बैठ कर समस्त मत्स्यों को कर्षित किया तो मत्स्येंद्रनाथ नाम पड़ा। यह कीर्तिनाम ही देश-विश्रुत हुआ है।

शक्ति नाम—इनकी शक्ति का नाम श्री ललिताभैरवी अम्बा पापू था। चंद्रद्वीप के बारे में तरह तरह के अटकल लगाए गए हैं। किसी के मत से वह कलकत्ते के दक्षिण में अवस्थित सुंदर वन है (क्योंकि सुन्दर वस्तुतः 'चंद्र' का ही परवर्ती रूपान्तर है) और किसी किसी के मत से नवाखाली जिले में। पागलबाबा ने मुझे बताया था कि चंद्रद्वीप कोई आसाम का पहाड़ी स्थान है जो नदी के बहाव से घिरकर

---

१. परमहंसास्तु कामंनिषेधयन्ति स निषेधो न भवत्येवम्। कथम् ? तदुक्तं श्री मीननाथेन—
हरकोपानलेनैव भस्मीभूतः कृतः स्मरः।
अर्द्धगौरीशरीरो हि तेन तस्मै नमोऽस्तु ते।
अतो महासिद्धा विपयरीत्या तु त्यागमेव कुर्वन्ति। —गो० सि० सं०, पृ० ६६-६७

२. ना ग र स र्व स्व (पद्मश्री-विरचित) बंबई १९२१ की टिप्पणी में प० तनसुखराम शर्मा ने मीननाथ नामक एक कामशास्त्रीय आचार्य की पुस्तक स्मरदीपिका से अनेक वचन उद्धृत किए हैं।

३. लेवी (ल ने पा ल ; जि० १, पृ० १५५) ने लिखा है कि श्री नाथ महाराज जोशी साखर (सार्थ ज्ञानेश्वरी १८-१७५४) ने मीननाथ का अनुवाद मत्स्येंद्रनाथ किया है। इस पर टीका करते हुए ब्रिग्स ने (पृ० २३०) लिखा है कि बंगाल में मीननाथ मत्स्येंद्रनाथ से भिन्न माने जाते हैं। कहना व्यर्थ है कि यह बात आंशिक रूप में ही सत्य है।

४

मत्स्येंद्रनाथ–विषयक कथाएँ और उनका निष्कर्ष

मत्स्येंद्रनाथ-विषयक मुख्य कहानियाँ नीचे संग्रह की जा रही हैं :—

(१) कौलज्ञान निर्णय १६-२९-३६

भैरव और भैरवी चंद्रद्वीप में गए हुए थे। वहां कार्तिकेय उनके शिष्य रूप में पहुँचे। अज्ञान के प्राबल्य से उन्होंने महान् कु ला ग म शास्त्र को समुद्र में फेंक दिया। भैरवने समुद्र में जा कर मछली का पेट फाड़ कर उस शास्त्र का उद्धार किया इस कार्य से कार्तिकेय बहुत क्रुद्ध हुए। उन्होंने एक बड़ा-सा गड्ढा खोदा और छिपकर दुबारा उस शास्त्र को समुद्र में फेंक दिया। इस बार एक प्रचण्डतर शक्तिशाली मत्स्य ने उसे खा लिया। भैरवने शक्ति-तेज से एक जाल बनाया और उस मत्स्य को पकड़ना चाहा। पर वह प्रायः उतना ही शक्ति सम्पन्न था जितना स्वयं भैरव थे। हार कर भैरव को ब्राह्मण वेश त्याग करना पड़ा। उस महामत्स्य का उदर फिर से विदीर्ण करके उन्होंने कु ला ग म शास्त्र का उद्धार किया।

(२) बंगला में मीननाथ (मत्स्येंद्रनाथ) के उद्धार के संबंध में दो पुस्तकें प्राप्त हुई हैं। एक है फयजुल्ला का गो र क्ष वि ज य और दूसरी श्यामादास का मी न चे त न। दोनों पुस्तकें वस्तुतः एक ही हैं। इनमें जो कहानी दी हुई है उसे श्री सुकुमार सेन के बं ग ला सा हि त्य के इ ति हा स पृ० ९३७ से संक्षिप्त रूप में संग्रह किया जा रहा है :—

आद्य और आद्या ने पहले देवताओं की सृष्टि की। बाद में चार सिद्धों की उत्पत्ति हुई। पश्चात् एक कन्या भी उत्पन्न हुई, नाम रखा गया, गौरी। आद्य के आदेश से शिव ने गौरी से विवाह किया और पृथ्वी पर चले आए। चारों सिद्धों ने, जिनके नाम मीननाथ गोरक्षनाथ, हाड़िपा (जालंधरिनाथ) और कानफा (कानूपा कृष्णपाद) थे, वायुमात्र के आहार से, योगाभ्यास आरंभ किया। गोरक्षनाथ मीन नाथ के सेवक हुए और कानपा (कानफा) हाड़िपा (हाड़िफा) के। उधर एक दिन गौरी ने शिव के गले में मुण्डमाल देखकर उसका कारण पूछा। शिव ने बताया कि वस्तुतः वे मुण्ड गौरी के ही हैं। गौरी हैरान ! क्या कारण कि वे बराबर मरती रहती हैं और शिव कभी नहीं मरते। पूछने पर शिव ने बताया कि यह गुप्त रहस्य सब के सुनने योग्य नहीं है। चलो हम लोग क्षीर सागर में 'टंग' (=डोंगी) पर बैठ कर इस ज्ञान के विषय में वार्तालाप करें। दोनों ही क्षीर सागर में पहुँचे, इधर श्री मीननाथ मछली बन कर टंग के नीचे बैठ गए। देवी को सुनते सुनते जब नींद आ गई तब भी मीन नाथ हुँकारी भरते रहे। इस आवाज से जब देवी की निद्रा टूटी, तो वे कह उठीं कि मैंने तो महाज्ञान सुना ही नहीं। शिव विचारने लगे कि यह हुँकारी किसने भरी। देखते हैं तो 'टंग' के नीचे मीननाथ हैं। उन्होंने क्रुद्ध हो कर शाप दिया कि तुम एक समय महाज्ञान भूल जाओगे।

द्वीप जैसा बन गया है। अब भी योगी लोग उस स्थान पर तीर्थ करने जाते हैं। चंद्रद्वीप कामरूप के आस पास ही कोई जगह होगी क्योंकि यह प्रसिद्ध है कि मत्स्येंद्रनाथ ने कामरूप में साधना की थी। तंत्रालोक की टीका से भी इसी अनुमान की पुष्टि होती है। नदी के बहाव से घिरे हुए स्थान को पुराने जमाने में द्वीप कहते थे। 'नवद्वीप' नामक प्रसिद्ध विद्यापीठ-नगर इसी प्रकार के बहावों के मध्य में स्थित नौ छोटे छोटे टापुओं (द्वीपों) को मिला कर बसा था। रत्नाकर जोपम कथा नामक भोट ग्रंथ से भी चंद्रद्वीप का लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) नदी के भीतर होना पुष्ट होता है (गंगा, पुरातत्वांक पृ० २४४), परन्तु कौलज्ञाननिर्णय १६ वें पटल से जान पड़ता है कि चंद्रद्वीप कहीं समुद्र के आस-पास था। योगिसंप्रदायाविष्कृति (पृ० २२) में चंद्रगिरि नामक स्थान को गोरक्षनाथ की जन्मभूमि कहा गया है। यह स्थान गोदावरी गंगा के समीपवर्ती प्रदेश में बताया गया है।

४

मत्स्येंद्रनाथ–विषयक कथाएँ और उनका निष्कर्ष

मत्स्येंद्रनाथ-विषयक मुख्य कहानियाँ नीचे संग्रह की जा रही हैं:—

(१) कौलज्ञान निर्णय १६-२९-३६

भैरव और भैरवी चंद्रद्वीप में गए हुए थे। वहां कार्तिकेय उनके शिष्य रूप में पहुँचे। अज्ञान के प्राबल्य से उन्होंने महान् कु ला ग म शास्त्र को समुद्र में फेंक दिया। भैरवने समुद्र में जा कर मछली का पेट फाड़ कर उस शास्त्र का उद्धार किया इस कार्य से कार्तिकेय बहुत क्रुद्ध हुए। उन्होंने एक बड़ा-सा गड्ढा खोदा और छिपकर दुबारा उस शास्त्र को समुद्र में फेंक दिया। इस बार एक प्रचण्डतर शक्तिशाली मत्स्य ने उसे खा लिया। भैरवने शक्ति-तेज से एक जाल बनाया और उस मत्स्य को पकड़ना चाहा। पर वह प्रायः उतना ही शक्ति सम्पन्न था जितना स्वयं भैरव थे। हार कर भैरव को ब्राह्मण वेश त्याग करना पड़ा। उस महामत्स्य का उदर फिर से विदीर्ण करके उन्होंने कु ला ग म शास्त्र का उद्धार किया।

(२) बंगला में मीननाथ (मत्स्येंद्रनाथ) के उद्धार के संबंध में दो पुस्तकें प्राप्त हुई हैं। एक है फयजुल्ला का गो र क्ष वि ज य और दूसरी श्यामादास का मी न चे त न। दोनों पुस्तकें वस्तुतः एक ही हैं। इनमें जो कहानी दी हुई है उसे श्री सुकुमार सेन के बं ग ला सा हि त्य के इ ति हा स पृ० ९३७ से संक्षिप्त रूप में संग्रह किया जा रहा है:—

आद्य और आद्या ने पहले देवताओं की सृष्टि की। बाद में चार सिद्धों की उत्पत्ति हुई। पश्चात् एक कन्या भी उत्पन्न हुई, नाम रखा गया, गौरी। आद्य के आदेश से शिव ने गौरी से विवाह किया और पृथ्वी पर चले आए। चारों सिद्धों ने, जिनके नाम मीननाथ गोरक्षनाथ, हाड़िफा (जालंधरिनाथ) और कानफा (कानूपा कृष्णपाद) थे, वायुमात्र के आहार से, योगाभ्यास आरंभ किया। गोरक्षनाथ मीन नाथ के सेवक हुए और कानपा (कानफा) हाड़िपा (हाड़िफा) के। उधर एक दिन गौरी ने शिव के गले में मुण्डमाल देखकर उसका कारण पूछा। शिव ने बताया कि वस्तुतः वे मुण्ड गौरी के ही हैं। गौरी हैरान! क्या कारण कि वे बराबर मरती रहती हैं और शिव कभी नहीं मरते। पूछने पर शिव ने बताया कि यह गुप्त रहस्य सब के सुनने योग्य नहीं है। चलो हम लोग क्षीर सागर में 'टंग' (=डोंगी) पर बैठ कर इस ज्ञान के विषय में वार्तालाप करें। दोनों ही क्षीर सागर में पहुँचे, इधर श्री मीननाथ मछली बन कर टंग के नीचे बैठ गए। देवी को सुनते सुनते जब नींद आ गई तब भी मीन नाथ हुँकारी भरते रहे। इस आवाज से जब देवी की निद्रा टूटी, तो वे कह उठीं कि मैंने तो महाज्ञान सुना ही नहीं। शिव विचारने लगे कि यह हुँकारी किसने भरी। देखते हैं तो 'टंग' के नीचे मीननाथ हैं। उन्होंने क्रुद्ध हो कर शाप दिया कि तुम एक समय महाज्ञान भूल जाओगे।

आदिगुरु शिव कैलास पर्वत पर चले गए और वहीं रहने लगे। गौरी ने उनसे बार बार आग्रह किया कि वे सिद्धों को विवाह करके वंश चलाने का आदेश दें। शिव ने कहा कि सिद्ध लोगों में काम-विकार नहीं है। गौरी ने कहा कि भला यह भी संभव है कि मनुष्य के शरीर में काम विकार हो ही नहीं, आप आज्ञा दें तो मैं परीक्षा लूँ। शिव ने आज्ञा दे दी। चारों सिद्ध चार दिशाओं में तप कर रहे थे—पूरब में हाड़िफा, दक्षिण मे कानफा, पश्चिम में गोरक्ष और उत्तर में मीननाथ। देवी को परीक्षा का अवसर देने के लिये शिव ने ध्यान बल से चारों सिद्धों का आवाहन किया। चारों उपस्थित हुए। देवी ने भुवनमोहिनी रूप धारण करके सिद्धों को अन्न परोसा। चारों ही सिद्ध उस रूप पर मुग्ध हुए। माननाथ ने मन ही मन सोचा कि यदि ऐसी सुंदरी मिले तो आनन्द केलि से रात काटूँ। देवी ने उन्हें शाप दिया कि तुम महाज्ञान भूलकर कदली देश में सोलह सौ सुंदरियों के साथ कामकौतुक में रत होगे। हाड़िफा ने ऐसी सुन्दरी का झाड़ूदार होने में भी कृतार्थ होने की अभिलाषा प्रकट की और फलस्वरूप मयनामती रानी के घर में झाड़ूदार होने का शाप पाया। हाड़िफा के पुत्र गाभूर सिद्ध (पुस्तक में ये अचानक आते हैं) ने इस सुन्दरी को पाने के लिये हाथ पैर कटा देने पर भी जीवन को सफल माना और बदले में कामार्त सौतेली माँ से अपमान पाने का शाप मिला।[1] कानफा ने मन ही मन सोचा कि ऐसी सुन्दरी मिले तो प्राण देकर भी कृतार्थ होऊँ और इसीलिए देवी ने उन्हें शाप दिया कि तुम तुरमान देश में डाकू (?) होओ। पर गोरक्ष ने सोचा कि ऐसी सुन्दरी मेरी माता हो तो उसकी गोद में बैठकर स्नेह पाऊं और दूध पीऊँ। गोरक्षनाथ परीक्षा में खरे उतरे और वर भी पाया, पर देवी ने उनकी कठोरतर परीक्षा लेने का संकल्प किया। शापानुसार सभी सिद्ध तत्तत् स्थानों में जाकर फल भोगने लगे। गोरक्षनाथ एक बार बकुल वृक्ष के नीचे बैठे समाधिस्थ हुए थे. देवी ने उन्हें नानाभाव से योगभ्रष्ट करना चाहा पर वे अन्त तक खरे उतरे। वे रास्ते में नग्न सो गई, गोरक्ष ने विल्व पत्र से उनका शरीर ढंक दिया, मक्खी बनकर गोरक्ष के उदर में प्रविष्ट हो पीड़ा देने लगीं। गोरक्ष ने श्वास रुद्ध करके उन्हें बुरी तरह छका दिया। अन्त में देवी राक्षसी बनकर मनुष्य बलि लेने लगीं। शिव जी के द्वारा अनुरुद्ध होकर गोरक्ष ने देवी का उद्धार किया और उनके स्थान पर एक मूर्ति प्रतिष्ठित की। प्रवाद है कि कलकत्ते में काली रूप से पूजी जाने वाली मूर्ति वही मूर्ति है। देवी ने प्रसन्न होकर सुन्दर स्त्रीरत्न पाने का वर देकर गोरक्ष को अनुगृहीत किया। देवी के वर की मान-रक्षा के लिये शिवने माया से एक कन्या उत्पन्न की जिसने गोरक्षनाथ को पति रूप में वरण किया। गोरक्ष उसके घर में जाकर छः महीने के बालक बन गये और दूध पीने के लिये मचलने लगे। कन्या बड़े फेर में पड़ी। गोरक्षनाथ ने उससे कहा कि मुझ में काम विकार तो होने से रहा पर तुम हमारा कौपीन या कर-पटी धोकर उसका पानी पी जाओ, तुम्हें पुत्र होगा। आदेश के अनुसार कन्या ने करपटी धोकर जलपान कर लिया। जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम कर्पटीनाथ पड़ा।

१. संभवतः चौरंगीनाथ से तात्पर्य है।

इसके बाद गोरखनाथ बकुल वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ हुए। उधर कानफा ठीक उनके सिर पर से उड़ते हुए आकाशमार्ग से कहीं जा रहे थे। छाया देखकर गोरखनाथ ने सिर ऊपर उठाया और क्रोधवश अपना खड़ाऊँ ऊपर फेंका। खड़ाऊँ ने कानपा को पकड़ कर नीचे किया। गोरखनाथ के सिर पर से उड़ने के अविचार का फल उन्हें हाथोंहाथ मिला। पर कानपा ने व्यंग्य करते हुए कहा कि बड़े सिद्ध बने हो, कुछ गुरु का भी पता है कि वे कहाँ हैं। कदलीदेश में महाज्ञान भूलकर स्त्रियों के साथ वे विहार कर रहे हैं। उनकी शक्ति समाप्त हो गई। यमराज के कार्यालय में देख कर आ रहा हूँ कि उनकी आयु के तीन ही दिन बाकी हैं। बड़े सिद्ध हो तो जाओ, गुरु को बचाओ। गोरखनाथ ने कहा—मुझे तो समझा रहे हो। कुछ अपने गुरु की भी खबर है तुम्हें? मेहरकुल की महाज्ञानशीला रानी मयनामुती के पुत्र गोपीचंद ने उन्हें मिट्टी में गड़वा रखा है इस प्रकार अपने-अपने गुरु की बात जानकर दोनों सिद्ध उनके उद्धार के लिये अग्रसर हुए। पहले तो गोरखनाथ ने यमराज के कार्यालय में जाकर गुरु की आयुक्षीणता को ही मिटा दिया फिर उसी मौलसिरी के नीचे लौट आए और लंग और महालंग नामक दो शिष्यों को लेकर गुरु के उद्धार के लिए कदली वन में प्रविष्ट हुए। वेश उन्होंने ब्राह्मण का बनाया। ब्राह्मण देखकर लोग उन्हें प्रणाम करने लगे, गोरखनाथ को भी आशीर्वाद देना पड़ा। पर यह आशीर्वाद पत्राधारी ब्राह्मण का तो था नहीं। सिद्ध गोरखनाथ के मुँह से निकला था। फल यह होने लगा कि सब पापी-तापी दुःख मुक्त होने लगे। गोरखनाथ ने इस वेश को ठीक नहीं समझा। उन्होंने योगी का वेश धारण किया। कदली देश के एक सरोवर के तट पर बकुल वृक्ष के नीचे समासीन हुए। उस सरोवर से एक कदली नारी आई थी। वह गोरखनाथ को देख कर मुग्ध हो गई। उसी से गोरखनाथ को पता लगा कि उनके गुरु मीननाथ सोलह सौ सेविकाओं द्वारा परिवृता मंगला और कमला नामक पटरानियों के साथ विहार कर रहे हैं। वहाँ योगी का जाना निषिद्ध है। जाने पर उनका प्राणदण्ड होगा। केवल नर्तकियां ही मीननाथ का दर्शन पा सकती हैं। गुरु के उद्धार के लिए गोरखनाथ ने नर्तकी का रूप धारण किया पर द्वारी के मुख से इस अपूर्व सुन्दरी की रूप संपत्ति की बात सुन कर रानियों ने मीननाथ के सामने उसे नहीं आने दिया। अन्त में गोरखनाथ ने द्वार से ही मर्दल की ध्वनि की। आवाज सुन कर मीननाथ ने नर्तकी को बुलाया। मर्दल ध्वनि के साथ गोरखनाथ ने गुरु को पूर्ववर्ती बातों का स्मरण कराया और महाज्ञान का उपदेश दिया। सुनकर मीननाथ को चैतन्य हुआ। रानियों ने बिंदुनाथ पुत्र को लेकर क्रंदन करके मीननाथ को विचलित करना चाहा पर गोरखनाथ ने बिंदुनाथ को मृत बनाकर और बाद में जीवित करके फिर उन्हें तत्वज्ञान दिया। कदली नारियों ने भी गोरखनाथ का प्राण लेने का षड़यंत्र किया। सो गोरखनाथ ने उन्हें शाप दिया वे चमगादड़ हो गई। फिर गुरु और बिंदुनाथ को लेकर गोरखनाथ अपने स्थान विजय नगर में लौटे।

(३) लेवी ने ल ने पा ल जि० १ पृ० ३४७-३५५ में नेपाल में प्रचलित दो कहानियों का संग्रह किया है। ग्रियर्सन ने इ० रे० ए० में और बागची ने कौ ल ज्ञा-

न निर्णय की भूमिका में इन कहानियों का सार दिया है। यो० सं० आ० में भी यह कहानी कुछ परिवर्तित रूप में पाई जाती है। नीचे इन तीनों कहानियों का संग्रह किया जा रहा है :–

(क) नेपाल में प्रचलित बौद्धकथा

बौद्ध कथा में मत्स्येंद्रनाथ को अवलोकितेश्वर समझा गया है। मत्स्येंद्रनाथ एक पर्वत पर रहते थे जिस पर चढ़ना कठिन था। गोरक्षनाथ उनके दर्शन के लिये गये हुए थे पर पर्वत पर चढ़ना दुष्कर समझकर उन्होंने एक चाल चली। नौ नागों को बाँधकर वे बैठ गये जिसका परिणाम यह हुआ कि नेपाल में बारह वर्ष तक वर्षा नहीं हुई। राजा नरेंद्रदेव के गुरु बुद्धदत्त कारण समझ गये और अवलोकितेश्वर को ले आने का संकल्प करके कपोतक पर्वत पर गये। उनकी सेवा से प्रसन्न होकर. अवलोकितेश्वर ने उन्हें एक मंत्र दिया और कहा कि इसके जप से वे आकृष्ट होकर जपकर्ता के पास आ जायेंगे। घर लौट कर बुद्धदत्त ने मंत्र जप का अनुष्ठान किया। मंत्र शक्ति से आकृष्ट होकर अवलोकितेश्वर भृंग बन कर कमण्डलु में प्रविष्ट हुए। उस समय राजा नरेंद्र देव सो रहा था, बुद्धदत्त ने लात मारकर उसे जगाया और इशारा किया कि कमण्डलु का मुख बन्द कर दे। वैसा करने पर अवलोकितेश्वर नेपाल में ही बँधे रह गये और नेपाल में प्रचुर वर्षा हुई। तभी से बुगम नामक स्थान में आज भी मत्स्येंद्रनाथ की यात्रा होती है।[1]

(ख) बुद्धपुराण नामक ग्रंथ में ब्राह्मणों में प्रचलित कहानी है। महादेव ने एक बार पुत्राभिलाषिणी किसी स्त्री को खाने के लिये भभूत दी। अविश्वास होने के कारण उस स्त्री ने उसे गोबर में फेंक दिया। बारह वर्ष बाद जब वे उस तरफ लौटे तो उस स्त्री से बालक के बारे में पूछा। स्त्री ने कहा कि उसने उस भभूत को गोबर में फेंक दिया था। गोबर में देखा गया तो बारह वर्ष का दिव्य बालक खेलता हुआ पाया गया। महादेव ही मत्स्येंद्र थे और बालक गोरक्षनाथ। मत्स्येंद्रनाथ ने उसे शिष्य रूप में साथ रख लिया। एक बार गोरक्षनाथ नेपाल गए पर वहाँ लोगों ने उनका उचित सम्मान नहीं किया फलतः रुष्ट होकर गोरक्षनाथ बादलों को बांध कर बैठ गए और नेपाल में बारह वर्ष का घोर अकाल पड़ा। नेपाल के सौभाग्य से मत्स्येंद्रनाथ उधर से पधारे और गुरु को समागत देखकर गोरक्षनाथ को अभ्युत्थान आदि से उनका सम्मान करना पड़ा। उठते ही बादल छूट गए और प्रचुर वर्षा हुई इसीलिये मत्स्येंद्रनाथ के उस उपकार की स्मृतिरक्षा के लिये उत्सव यात्रा प्रवर्तित हुई।

(३) योगिसंप्रदायाविष्कृति में कहानी का प्रथम भाग (अध्याय ३ में) कुछ अन्तर के साथ दिया हुआ है। पुत्र लाभ की कामना करने वाली सरस्वती नामक ब्राह्मणी ने जो गोदावरी गंगा के समीपवर्ती चंद्रगिरि नामक स्थान के ब्राह्मण सुराज की पत्नी थी भभूत को फेंक नहीं दिया था बल्कि खा गई थी और उसी के गर्भ

---

१. और भी देखिये : डी० राइट : हिस्टरी ऑफ नेपाल : कैम्ब्रिज, १८७७ पृ० १४० और आगे।

में गोरक्षनाथ आविर्भूत हुए थे। कहानी का दूसरा भाग भी परिवर्तित रूप में पाया जाता है (अध्याय ४९)। इस ग्रंथ के अनुसार नेपाल में एक मत्स्येंद्री जाति थी जिस पर तत्कालीन राजा और राजपुरुष लोग अत्याचार कर रहे थे। यह जाति गोरक्षनाथ के गुरु मत्स्येंद्रनाथ की पूजा करती थी। उनकी करुण कहानी सुनकर ही गोरक्षनाथ ने नेपाल के राजा को दंड देने के लिये तीन वर्ष तक अकाल उत्पन्न कर दिया था। राजा के ग़लती स्वीकार करने और मत्स्येंद्रियों पर अत्याचार न करने का आश्वासन देने के बाद गुरु गोरक्ष ने कृपा की और प्रचुर वर्षा हुई। राजा ने मत्स्येंद्रनाथ के सम्मान में शानदार यात्रा प्रवर्तित की, पर असल में वह दिखावा भर था। अपने पुराने दुष्कृत्यों को वह दुहराता ही रहा। लाचार हो कर गुरु गोरक्षनाथ ने वसन्त नामक अपने अकिंचन शिष्य को मिट्टी के पुतले बनाने का आदेश दिया। गुरु की कृपा से ये पुतले सैनिक बन गए। इन्हीं को लेकर वसन्त ने महींद्रदेव पर चढ़ाई की। बाद में पराजित महींद्रदेव ने वसन्त को राज्य का उत्तराधिकारी स्वीकार किया और इस प्रकार सं० ४२० में गोरखा राज्य प्रतिष्ठित हुआ।

(४) योगि संप्रदायाविष्कृति में मत्स्येंद्रनाथ संबंधी कथाएं

नारद जी से पार्वती को यह रहस्य मालूम हुआ कि शिव जी ने गले में जो मुण्डमाल धारण किया है, वह उनके ही पूर्व जन्मों के कपाल हैं; अमरकथा न जानने के कारण ही वे मरती रहती हैं और उसके जानने के कारण ही शिव अमर बने हुए हैं। पार्वती के अत्यन्त आग्रह पर शिव जी ने अमरकथा सुनाने के लिये समुद्र में निर्जन स्थान चुना। इधर कविनारायण मत्स्येंद्रनाथ के रूप में एक भृगुवंशीय ब्राह्मण के घर अवतरित हुए थे। पर गंडान्त योग में पैदा होने के कारण उस ब्राह्मण ने उन्हें समुद्र में फेंक दिया था। एक मछली बारह वर्ष तक उन्हें निगले रही और वे उसके पेट में ही बढ़ते रहे। पार्वती को सुनाई जाने वाली अमरकथा को मछली के पेट से इस बालक ने सुना और बाद में शिवजी द्वारा अनुगृहीत और उद्धृत होकर महासिद्ध हुआ (अध्याय २)। इस बालक ने (मत्स्येंद्र ने) अपनी अपूर्व सिद्धि के बल से हनुमान, वीरबैताल, वीरभद्र, भद्रकाली, वीरभद्र और चमुण्डा देवी को पराजित किया (अध्याय ५-१०) परन्तु दो बार ये गृहस्थी के चक्र में फंस गए। प्रथम बार तो प्रयागराज के राजा के मरने से शोकाकुल जनसमूह को देखकर गोरक्षनाथ ने ही उनसे राजा के मृत शरीर में प्रवेश करके लोगों को सुखी करने का अनुरोध किया और मत्स्येंद्रनाथ ने अपने मृत शरीर की बारह वर्ष तक रक्षा करने की अवधि दे कर राजा के शरीर में प्रवेश किया। बारह वर्ष तक वे सानंद गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करते रहे। किसी प्रकार रानियों को रहस्य मालूम हो गया और उन्होंने मत्स्येंद्रनाथ के मृत शरीर को नष्ट कर देना चाहा। पर वीरभद्र उस शरीर को ले गए और वह नष्ट होने से बच गया। अपने पुराने बैर के कारण वीरभद्र उस शरीर को लौटाना नहीं चाहते थे, परन्तु गोरक्षनाथ की अद्भुत शक्ति के सामने उन्हें झुकना पड़ा और मत्स्येंद्रनाथ को फिर अपना शरीर प्राप्त हुआ। इसी समय मत्स्येंद्रनाथ के माणिकनाथ नामक पुत्र उत्पन्न हुए

जो बाद में चल कर बहुत बड़े सिद्ध योगी हुए। एक दूसरी बार त्रियादेश (अर्थात् सिंहल देश) की रानी ने अपने रुग्ण-क्षीण पति से असन्तुष्ट हो कर अन्य योग्य पुरुष की कामना करती हुई हनुमान जी की कृपा प्राप्त की। हनुमान जी ने स्वयं गृहस्थी के बंधन में बंधना अस्वीकार किया, पर मत्स्येंद्रनाथ को ले आ दिया। रानियों ने राज्य में योगियों का आना निषेध कर दिया था। गोरक्षनाथ गुरु का उद्धार करने आए तो हनुमान जी ने बाधा दी। व्यर्थ का झगड़ा मोल न ले कर गोरक्षनाथ ने बालक-वेश बना राज्य में प्रवेश किया। उसी समय कलिंगा नामक अपूर्व नृत्य-चतुरा वेश्या मत्स्येंद्रनाथ के अन्तःपुर में नाचने जा रही थी। गोरक्षनाथ ने साथ चलना चाहा और स्त्री-वेश बनाने और तबला बजाने में अपनी निपुणता का परिचय देकर उसे साथ ले चलने को राजी किया। रात को अन्तःपुर में कलिंगा का मनोहर नृत्य हुआ और मत्स्येंद्रनाथ मुग्ध हो रहे। गोरक्षनाथ ने मंत्र-बल से तबलची के पेट में पीड़ा उत्पन्न कर दी और इस प्रकार कलिंगा ने निरुपाय होकर उनसे तबला बजाने का अनुरोध किया। अवसर देख कर गोरक्षनाथ ने तबले पर 'जागो गोरखनाथ आ गया' की ध्वनि की और गुरु को चैतन्य-लाभ कराया। रानी ने बहुत प्रकार से गोरक्षनाथ को वश करना चाहा और मत्स्येंद्रनाथ भी वह सुख छोड़कर अन्यत्र जाने में बहुत पशोपेश करते रहे पर अन्त तक गोरक्षनाथ उन्हें क्षणभंगुर विषय-सुख से विरक्त करने में सफल हुए। इसी समय मत्स्येंद्रनाथ के दो पुत्र हुए थे—परशुराम और मीनराम, जो आगे चलकर बड़े सिद्ध हुए (अध्याय २३) यह कथा सुधाकरचंद्रिका (पृ० २४०) में संक्षिप्त रूप में दी हुई है। इसके अनुसार गोरखनाथ ने तबले से यह ध्वनि निकाली थी—'जाग मछन्दर गोरख आया।'

(५) नाथचरित्र की कथा

पं० विश्वेश्वर नाथ जी रेउ ने सरदार म्यूज़ियम, जोधपुर से सन् १९३७ ई० में नाथचरित्र, नाथपुराण और मेघमाला नामक पुस्तकों से और उनके आधार पर बने हुए चित्रों से नाथ-परंपरा की कुछ कथाएं संगृहीत की हैं। नाथचरित्र नामक ग्रन्थ आज से लगभग सौ-सवासौ वर्ष पहले महाराजा मान सिंह जी के समय में संग्रह किया गया था, जो किसी कारण-वश पूरा नहीं हो सका। इस पुस्तक पर महाराजा मानसिंह की एक संस्कृत टीका भी प्राप्त हुई है। प्रथम दो पुस्तकें मारवाड़ी भाषा में हैं और अन्तिम (मेघमाला) संस्कृत में। इस संग्रह से मत्स्येंद्रनाथ संबंधी दो कथाएँ उद्धृत की जा रही हैं।

(१) एक बार मत्स्येन्द्रनाथ संसारपर्यटन को निकले। मार्ग में जिस समय वह एक नगर में पहुँचे, उस समय वहां के राजा का स्वर्गवास हो गया और उसके नौकर उसके शरीर को वैकुंठी में रखकर जलाने को ले चले। इस पर मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने शरीर की रक्षा का भार अपने साथ के शिष्यों को सौंप कर 'परकाय-प्रवेश' विद्या के बल से उस राजा के शरीर में प्रवेश किया। इससे वह राजा जी उठा और उसके साथ वाले सब हर्ष मनाने लगे। इस प्रकार राज-शरीर में रहकर मत्स्येन्द्रनाथ ने बहुत समय तक भोग-विलास का आनन्द लिया। इसी बीच एक पर्व के अवसर

पर हरद्वार में योगी लोग इकट्ठे हुए। वहाँ पर मत्स्येन्द्र के शिष्य गोरक्षनाथ और कनीपाव के बीच विवाद हो गया और कनीपाव ने गोरक्ष को उनके गुरु मत्स्येन्द्र-नाथ के भोग विलास में फँसे रहने का ताना दिया। यह सुन गोरक्ष राजा के शरीर में स्थित मत्स्येन्द्रनाथ के पास गए और उन्हें समझा कर वहाँ से चलने को तैयार किया। यह हाल जान रानी परिमला, जो विमलादेवी का अवतार थी, बहुत चिन्तित हुई। इसपर मत्स्येन्द्र ने रानी से फिर मिलने की प्रतिज्ञा की। अन्त में मत्स्येन्द्र और गोरक्ष के जाने पर रानी ने अग्नि-प्रवेश कर वह शरीर त्याग दिया और कुछ काल बाद एक राजा के यहां जयन्ती नामक कन्या के रूप में जन्म लिया। उसके बड़े होने पर पूर्व प्रतिज्ञानुसार मत्स्येन्द्र वहाँ पहुँचे और उससे विवाह कर कदलीवन में उसके साथ विहार करने लगे। देवताओं और सिद्धों ने वहाँ जाकर उनकी स्तुति की और नाथ जी ने पहुँच कर मत्स्येन्द्र और जयन्ती को आशीर्वाद दिया।

(२) एक बार मत्स्येन्द्रनाथ कामरूप देश में जाकर तप करने लगे। परन्तु जब वहाँ का राजा मर गया, तब उन्होंने मृत राजा के शरीर में प्रवेश कर उसकी मंगला नामक रानी के साथ विहार किया। इसी प्रकार उन्होंने उस राजा की अन्य रानियों के साथ भी आनन्दोपभोग किया। इससे उनके दो पुत्र उत्पन्न हुए। कुछ काल बाद मंगला आदि रानियों ने मत्स्येन्द्र को पहचान लिया अन्त में गोरक्षनाथ वहाँ आ पहुँचे और अपने गुरु मत्स्येन्द्र और उनके दोनों पुत्रों को लेकर वहां से चल दिए। परन्तु बहुत काल तक भोगासक्त रहने के कारण मत्स्येन्द्र का मन अभी तक सुवर्ण और रत्नादि में फंसा हुआ था। यह देख गोरक्ष ने मार्ग के एक पर्वत-शिखर को अपनी सुराही के जल का छींटा देकर सुवर्ण का बना दिया। अपने शिष्य की इस सिद्धि को देख मत्स्येन्द्र ने अपने गले के आभूषण वग़ैरह तोड़ कर फेंक दिए। इसके बाद गोरक्षनाथ ने सुवर्ण को कलह का मूल समझा, सुराही के जल से सुवर्ण-शिखर को स्फटिक का बना दिया। परन्तु इससे भी उसको सन्तोष न हुआ। इसलिये उसने तीसरी बार सुराही का जल लेकर, उसे गेरू (गैरिक) का बना दिया।

आगे पहुँचने पर मत्स्येन्द्र ने अपने दोनों पुत्रों को पास के एक नगर में भिक्षा मांग लाने के लिये भेजा। उनमें से एक तो पवित्र भिक्षा न मिलने से खाली हाथ लौट आया, और दूसरा एक चमार के दिए उत्तम भोज्य पदार्थों को ले आया। यह देख मत्स्येन्द्र ने पहले पुत्र को पार्श्वनाथ होने का वर दिया और दूसरे को श्वेताम्बरी जैन होने का शाप दिया। इसके बाद वे सब कदलीवन को गए, और वहाँ पर मत्स्येन्द्र और गोरक्ष के बीच अनेक विषयों पर वार्तालाप होता रहा।

६. निष्कर्ष

गोरक्षनाथ और मत्स्येंद्रनाथ विषयक समस्त कहानियों के अनुशीलन से कई बातें स्पष्ट रूप से जानी जा सकती हैं। प्रथम यह कि मत्स्येंद्रनाथ और जालंधरनाथ समसामयिक थे। दूसरी यह कि मत्स्येंद्रनाथ गोरक्षनाथ के गुरु

थे और जालंधरनाथ कानुपा या कृष्णपाद के गुरु थे। तीसरी यह कि मत्स्येंद्रनाथ कभी योग मार्ग के प्रवर्तक थे फिर संयोगवश एक ऐसे आचार में सम्मिलित हो गए थे जिसमें स्त्रियों के साथ अबाध संसर्ग मुख्य बात थी—संभवतः यह वामाचारी साधना थी। चौथी यह कि शुरू से ही जालंधरनाथ और कानिपा की साधना-पद्धति मत्स्येंद्र-नाथ और गोरक्षनाथ की साधना-पद्धति से भिन्न थी। यह स्पष्ट है कि किसी एक का समय भी मालूम हो जाय तो बाकी कई सिद्धों के समय का पाता आसानी से लग जायगा। समय मालूम करने के लिये कई युक्तियाँ दी जा सकती हैं। एक एक कर के हम उन पर विचार करें।

(१) सबसे प्रथम तो मत्स्येंद्रनाथ द्वारा लिखित कौलज्ञाननिर्णय ग्रंथ का लिपि-काल निश्चित रूप से सिद्ध कर देता है कि मत्स्येंद्रनाथ ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्ववर्ती हैं।

(२) हमने ऊपर देखा है कि सुप्रसिद्ध काश्मीरी आचार्य अभिनव गुप्त ने अपने तंत्रालोक में मच्छंद विभु को नमस्कार किया है। ये 'मच्छन्द विभु' मत्स्येंद्रनाथ ही हैं, यह भी निश्चित है। अभिनवगुप्त का समय निश्चित रूप से ज्ञात है। उन्होंने ईश्वर प्रत्यभिज्ञा की बृहती वृत्ति सन् १०१५ ई० में लिखी थी और क्रम स्तोत्र की रचना सन् ९९१ ई० में की थी। इस प्रकार अभिनवगुप्त सन् ईसवी की दसवीं शताब्दी के अन्त में और ग्यारहवीं शताब्दी के आदि में वर्तमान थे।[1] मत्स्येंद्रनाथ इससे पूर्व ही आविर्भूत हुए होंगे।

(३) पंडित राहुल सांकृत्यायन ने गंगा के पुरातत्वांक में ८४ वज्रयानी सिद्धों की सूची प्रकाशित कराई है। इसके देखने से मालूम होता है कि मीनपा नामक सिद्ध जिन्हें तिब्बती परंपरा में मत्स्येंद्रनाथ का पिता कहा गया है, पर जो वस्तुतः मत्स्येंद्रनाथ से अभिन्न हैं, राजा देवपाल के राज्य-काल में हुए थे। राजा देवपाल ८०९--४९ ई० तक राज्य करते रहे (चतुराशीति सिद्धप्रवृत्ति, तन्जूर ८६। १। कॉर्डियर पृ० २४७) इससे यह सिद्ध होता है कि मत्स्येंद्रनाथ नवीं शताब्दी के मध्य भाग में और अधिक से अधिक अन्त्य भाग तक वर्तमान थे।

(४) गोविन्दचंद्र या गोपीचंद्र का संबंध जालंधरपाद से बताया जाता है। वे कानफा के शिष्य होने से जालंधरपाद की तीसरी पुश्त में पड़ते हैं। इधर तिरुमलय की शैललिपि से यह तथ्य उद्धार किया जा सका है कि दक्षिण के राजा राजेंद्रचोल ने माणिकचंद्र के पुत्र गोविन्दचंद्र को पराजित किया था। बंगला में गोविन्दचंद्रेर गान नाम से जो पोथी उपलब्ध हुई है उसके अनुसार भी गोविन्द-चंद्र का किसी दाक्षिणात्य राजा का युद्ध वर्णित है। राजेन्द्र चोल का समय १०६३ ई०—१११२ ई० है।[2] इस से अनुमान किया जा सकता है कि गोविन्दचंद्र ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य भाग में वर्तमान थे। यदि जालंधरपाद उनसे सौ वर्ष पूर्ववर्ती हों तो

---

१. एस. के. दे; संस्कृत पोएटिक्स, जिल्द १, पृ० १०५

२. दीनेशचंद्र सेन : बंगभाषा ओ साहित्य।

भी उनका समय दसवीं शताब्दी के मध्य भाग में निश्चित होता है। मत्स्येंद्रनाथ का समय और भी पहले निश्चित हो चुका है। जालंधरपाद उनके समसामयिक थे इस प्रकार उनकी कष्ट-कल्पना के बाद भी इस बात से पूर्ववर्ती प्रमाणों की अच्छी संगति नहीं बैठती।

(५) वज्रयानी सिद्ध कण्हपा ने स्वयं अपने गानों में जालंधरपाद का नाम लिया है। तिब्बती परंपरा के अनुसार ये भी राजा देवपाल (८०९--८४९ ई०) के समकालीन थे।[1] इस प्रकार जालंधरपाद का समय इनसे कुछ पूर्व ही ठहरता है।

(६) कन्थड़ी नामक एक सिद्ध के साथ गोरक्षनाथ का संबंध बताया जाता है। प्रबंधचिन्तामणि में एक कथा आती है कि चौलुक्य राजा मूलराज ने एक मूलेश्वर नाम का शिवमंदिर बनवाया था। सोमनाथ ने राजा के नित्य नियत वंदन-पूजन से सन्तुष्ट होकर अणहिल्लपुर में अवतीर्ण होने की इच्छा प्रकट की। फलस्वरूप राजाने वहाँ त्रिपुरुषप्रासाद नामक मंदिर बनवाया। उसका प्रबंधक होने के लिये राजा ने कंथड़ी नामक शैवसिद्ध से प्रार्थना की। जिस समय राजा उस सिद्ध से मिलने गया उस समय सिद्ध को बुखार था, पर अपने बुखार को उसने कंथा में संक्रमित कर दिया। कंथा कांपने लगी। राजा ने कारण पूछा तो उसने बताया कि उसी ने कंथा में ज्वर संक्रमित कर दिया है। बड़े छल-बल से उस निस्पृह तपस्वी को राजा ने मंदिर का प्रबंधक बनवाया।[2] कहानी के सिद्ध के सभी लक्षण नाथपंथी योगी के हैं। इस लिये यह कंथड़ी निश्चय ही गोरखनाथ के शिष्य ही होंगे। प्रबंधचिन्तामणि की सभी प्रतियों में लिखा है कि मूलराज ने संवत् ९९३ की आषाढ़ी पूर्णिमा को राज्य-भार ग्रहण किया था। केवल एक प्रति में ९९८ संवत् है[3]। इस हिसाब से जो काल अनुमान किया जा सकता है, वह पूर्ववर्ती प्रमाणों से निर्धारित तिथि के अनुकूल ही है। ये ही गोरक्षनाथ और मत्स्येंद्रनाथ का काल निर्णय करने के ऐतिहासिक या अर्द्ध-ऐतिहासिक आधार हैं। परन्तु प्रायः दन्तकथाओं और साम्प्रदायिक परंपराओं के आधार पर भी काल-निर्णय का प्रयत्न किया जाता है। इन दन्तकथाओं से सम्बद्ध ऐतिहासिक व्यक्तियों का काल बहुत समय जाना हुआ रहता है। बहुत से ऐतिहासिक व्यक्ति गोरक्षनाथ के साक्षात् शिष्य माने जाते हैं। उनके समय की सहायता से भी गोरक्षनाथ के समय का अनुमान किया जा सकता है। ब्रिग्स ने इन दन्तकथाओं पर अधारित काल को चार मोटे विभागों में इस प्रकार बांट लिया है:—

(१) कबीर, नानक आदि के साथ गोरक्षनाथ का संवाद हुआ था, इस पर दन्तकथाएँ भी हैं और पुस्तकें भी लिखी गई हैं। यदि इन पर से गोरक्षनाथ का काल-निर्णय किया जाय, जैसा की बहुत से पंडितों ने किया भी है, तो चौदहवीं शताब्दी के ईषत् पूर्व या मध्य में होगा। (२) गूगा की कहानी, पश्चिमी नाथों की अनु-

१. गंगापुरातत्वांक : पृ० २५४

२. प्र. चि. पृ० ११-१३

३. वही. पृ० २०

थे और जालंधरनाथ कानुपा या कृष्णपाद के गुरु थे। तीसरी यह कि मत्स्येंद्रनाथ कभी योग मार्ग के प्रवर्तक थे फिर संयोगवश एक ऐसे आचार में सम्मिलित हो गए थे जिसमें स्त्रियों के साथ अबाध संसर्ग मुख्य बात थी—संभवतः यह वामाचारी साधना थी। चौथी यह कि शुरू से ही जालंधरनाथ और कानिपा की साधना-पद्धति मत्स्येंद्र-नाथ और गोरक्षनाथ की साधना-पद्धति से भिन्न थी। यह स्पष्ट है कि किसी एक का समय भी मालूम हो जाय तो बाकी कई सिद्धों के समय का पाता आसानी से लग जायगा। समय मालूम करने के लिये कई युक्तियाँ दी जा सकती हैं। एक एक कर के हम उन पर विचार करें।

(१) सबसे प्रथम तो मत्स्येंद्रनाथ द्वारा लिखित कौलज्ञाननिर्णय ग्रंथ का लिपि-काल निश्चित रूप से सिद्ध कर देता है कि मत्स्येंद्रनाथ ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्ववर्ती हैं।

(२) हमने ऊपर देखा है कि सुप्रसिद्ध काश्मीरी आचार्य अभिनव गुप्त ने अपने तंत्रालोक में मच्छंद विभु को नमस्कार किया है। ये 'मच्छन्द विभु' मत्स्येंद्रनाथ ही हैं, यह भी निश्चित है। अभिनवगुप्त का समय निश्चित रूप से ज्ञात है। उन्होंने ईश्वर प्रत्यभिज्ञा की बृहती वृत्ति सन् १०१५ ई० में लिखी थी और क्रमस्तोत्र की रचना सन् ९९१ ई० में की थी। इस प्रकार अभिनवगुप्त सन् ईसवी की दसवीं शताब्दी के अन्त में और ग्यारहवीं शताब्दी के आदि में वर्तमान थे।[1] मत्स्येंद्रनाथ इससे पूर्व ही आविर्भूत हुए होंगे।

(३) पंडित राहुल सांकृत्यायन ने गंगा के पुरातत्त्वांक में ८४ वज्रयानी सिद्धों की सूची प्रकाशित कराई है। इसके देखने से मालूम होता है कि मीनपा नामक सिद्ध जिन्हें तिब्बती परंपरा में मत्स्येंद्रनाथ का पिता कहा गया है, पर जो वस्तुतः मत्स्येंद्रनाथ से अभिन्न हैं, राजा देवपाल के राज्य-काल में हुए थे। राजा देवपाल ८०९-४९ ई० तक राज्य करते रहे (चतुराशीति सिद्धप्रवृत्ति, तन्जूर ८६।१। कॉर्डियर पृ० २४७) इससे यह सिद्ध होता है कि मत्स्येंद्रनाथ नवीं शताब्दी के मध्य भाग में और अधिक से अधिक अन्त्य भाग तक वर्तमान थे।

(४) गोविन्दचंद्र या गोपीचंद्र का संबंध जालंधरपाद से बताया जाता है। वे कानफा के शिष्य होने से जालंधरपाद की तीसरी पुश्त में पड़ते हैं। इधर तिरुमलय की शैललिपि से यह तथ्य उद्धार किया जा सका है कि दक्षिण के राजा राजेंद्रचोल ने माणिकचंद्र के पुत्र गोविन्दचंद्र को पराजित किया था। बंगला में गोविन्दचंद्रेर गान नाम से जो पोथी उपलब्ध हुई है उसके अनुसार भी गोविन्द-चंद्र का किसी दाक्षिणात्य राजा का युद्ध वर्णित है। राजेन्द्र चोल का समय १०६३ ई०—१११२ ई० है।[2] इस से अनुमान किया जा सकता है कि गोविन्दचंद्र ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य भाग में वर्तमान थे। यदि जालंधरपाद उनसे सौ वर्ष पूर्ववर्ती हों तो

१. एस. के. दे; संस्कृत पोएटिक्स: जिल्द १, पृ० १०५

२. दीनेशचंद्र सेन : बंगभाषा ओ साहित्य।

भी उनका समय दसवीं शताब्दी के मध्य भाग में निश्चित होता है। मत्स्येंद्रनाथ का समय और भी पहले निश्चित हो चुका है। जालंधरपाद उनके समसामयिक थे इस प्रकार उनकी कष्ट-कल्पना के बाद भी इस बात से पूर्ववर्ती प्रमाणों की अच्छी संगति नहीं बैठती।

(५) वज्रयानी सिद्ध कण्हपा ने स्वयं अपने गानों में जालंधरपाद का नाम लिया है। तिब्बती परंपरा के अनुसार ये भी राजा देवपाल (८०९--८४९ ई०) के समकालीन थे।[1] इस प्रकार जालंधरपाद का समय इनसे कुछ पूर्व ही ठहरता है।

(६) कन्थड़ी नामक एक सिद्ध के साथ गोरक्षनाथ का संबंध बताया जाता है। प्र बं ध चि न्ता म णि में एक कथा आती है कि चौलुक्य राजा मूलराज ने एक मूलेश्वर नाम का शिवमंदिर बनवाया था। सोमनाथ ने राजा के नित्य नियत वंदन-पूजन से सन्तुष्ट होकर अणहिल्लपुर में अवतीर्ण होने की इच्छा प्रकट की। फलस्वरूप राजाने वहाँ त्रिपुरुषप्रासाद नामक मंदिर बनवाया। उसका प्रबंधक होने के लिये राजा ने कंथड़ी नामक शैवसिद्ध से प्रार्थना की। जिस समय राजा उस सिद्ध से मिलने गया उस समय सिद्ध को बुखार था, पर अपने बुखार को उसने कंथा में संक्रमित कर दिया। कंथा कांपने लगी। राजा ने कारण पूछा तो उसने बताया कि उसी ने कंथा में ज्वर संक्रमित कर दिया है। बड़े छल-बल से उस निस्पृह तपस्वी को राजा ने मंदिर का प्रबंधक बनवाया।[2] कहानी के सिद्ध के सभी लक्षण नाथपंथी योगी के हैं। इस लिये यह कंथड़ी निश्चय ही गोरखनाथ के शिष्य ही होंगे। प्र बं ध चि न्ता म णि की सभी प्रतियों में लिखा है कि मूलराज ने संवत् ९९३ की आषाढ़ी पूर्णिमा को राज्य-भार ग्रहण किया था। केवल एक प्रति में ९९८ संवत् है[3]। इस हिसाब से जो काल अनुमान किया जा सकता है, वह पूर्ववर्ती प्रमाणों से निर्धारित तिथि के अनुकूल ही है। ये ही गोरक्षनाथ और मत्स्येंद्रनाथ का काल निर्णय करने के ऐतिहासिक या अर्द्ध-ऐतिहासिक आधार हैं। परन्तु प्रायः दन्तकथाओं और साम्प्रदायिक परंपराओं के आधार पर भी काल-निर्णय का प्रयत्न किया जाता है। इन दन्तकथाओं से सम्बद्ध ऐतिहासिक व्यक्तियों का काल बहुत समय जाना हुआ रहता है। बहुत से ऐतिहासिक व्यक्ति गोरक्षनाथ के साक्षात् शिष्य माने जाते हैं। उनके समय की सहायता से भी गोरक्षनाथ के समय का अनुमान किया जा सकता है। ब्रिग्स ने इन दन्तकथाओं पर अधारित काल को चार मोटे विभागों में इस प्रकार बांट लिया है:—

(१) कबीर, नानक आदि के साथ गोरक्षनाथ का संवाद हुआ था, इस पर दन्तकथाएँ भी हैं और पुस्तकें भी लिखी गई हैं। यदि इन पर से गोरक्षनाथ का काल-निर्णय किया जाय, जैसा की बहुत से पंडितों ने किया भी है, तो चौदहवीं शताब्दी के ईषत् पूर्व या मध्य में होगा। (२) गूगा की कहानी, पश्चिमी नाथों की अनु-

---

१. गंगापुरातत्त्वांक : पृ० २५४

२. प्र. चि. पृ० १२-२३

३. वही. पृ० २०

श्रुतियाँ, बंगाल की शैवपरम्परा और धर्मपूजा का संप्रदाय, दक्षिण के पुरातत्त्व के प्रमाण, ज्ञानेश्वर की परंपरा आदि को प्रमाण माना जाय तो यह काल १२०० ई० के उधर ही जाता है। तेरहवीं शताब्दी में गोरखपुर का मठ ढहा दिया गया था, इसका ऐतिहासिक सबूत है। इसलिये निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि गोरक्षनाथ १२०० ई० के पहले हुए थे। इस काल के कम से कम एक सौ वर्ष पहले तो यह काल होना ही चाहिए (३) नेपाल के शैव-बौद्ध परंपरा के नरेंद्रदेव, उदयपुर के बाप्पा रावल, उत्तर-पश्चिम के रसालू और होदी, नेपाल के पूर्व में शंकराचार्य से भेट आदि पर आधारित काल ८वीं शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक के काल का निर्देश करते हैं। (४) कुछ परंपराएँ इससे भी पूर्ववर्ती तिथि की ओर संकेत करती हैं। ब्रिग्स दूसरे नंबर के प्रमाणों पर आधारित काल को उचित काल समझते हैं, पर साथ ही यह स्वीकार करते हैं कि यह अन्तिम निर्णय नहीं है। जब तक और कोई प्रमाण नहीं मिल जाता तब तक वे गोरक्षनाथ के विषय में इतना ही कह सकते हैं कि गोरक्षनाथ १२०० ई० से पूर्व, संभवतः ग्यारहवीं शताब्दी के आरंभ में, पूर्वी बंगाल में प्रादुर्भूत हुए थे[1]। परन्तु सब मिलाकर वे निश्चित रूप से ज़ोर देकर कुछ नहीं कहते और जो काल बताते हैं उसे क्यों अन्य प्रमाणों से अधिक युक्तिसंगत माना जाय, यह भी नहीं बताते। हम आगे 'संप्रदाय भेद'-नामक अध्याय में तिथि की इस बहुरूपता के कारण का अनुसंधान करेंगे।

हमें ऊपर के प्रमाणों के आधार पर नाथमार्ग के आदि प्रवर्तकों का समय नवीं शताब्दी का मध्य-भाग ही उचित जान पड़ता है। इस मार्ग में इस के पूर्ववर्ती सिद्ध भी बाद में चल कर अन्तर्भुक्त हुए हैं और इसलिये गोरक्षनाथ के संबंध में ऐसी दर्जनों दन्तकथाएं चल पड़ी हैं, जिनको ऐतिहासिक तथ्य मान लेने पर तिथि-संबंधी झमेला खड़ा हो जाता है। आगे हम इसकी युक्ति-संगत संगति बैठा सकेंगे।

मत्स्येंद्रनाथ जी जिस कदली देश या स्त्रीदेश में नये आचार में जा फंसे थे; वह कहाँ है? *मीनचेतन* और *गोरक्षविजय* में उसका नाम कदली देश बताया गया है और *योगिसंप्रदायाविष्कृति* में 'त्रियादेश' अर्थात् सिंहल द्वीप कहा गया है। सिंहल देश ग्रंथकार की व्यख्या है। भारतवर्ष में स्त्रीदेश नामक एक स्त्रीप्रधान देश की ख्याति बहुत पुराने ज़माने से है। नाना स्थानों के रूप में इसे पहचानने की कोशिश की गई है। हिमालय के पार्वत्य अञ्चल में ब्रह्मपुर के उत्तरी प्रदेश को जो वर्तमान गढ़वाल और कमायूं के अन्तर्गत पड़ता है, पुराना स्त्रीराज्य बताया गया है। सातवीं शताब्दी में इसे 'सुवर्ण गोत्र' कहते थे (*विक्रमांकचरित* १८-५७; *गरुड़ पुराण* ५५ अ०)। कहते हैं इस देश की रानी प्रमीला ने अर्जुन के साथ युद्ध किया था[2] (*जैमिनि भारत* अ० २२)। कभी कभी कुलूत देश (कुल्लू) को भी स्त्री देश कहा गया है। ह्युएन्तसंग ने सतलज के उद्गम-स्थान के पास किसी स्त्री-राज्य का संधान पाया था। आटकिन्सन के *हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स*, से भी यह तथ्य प्रमा-

---

१ ब्रिग्स, पृ० २४३-४

२. नंदलाल दे: *जिओग्राफिकल डिक्शनरी*, पृ० १९४

णित हुआ है। किसी किसी पंडित ने कामरूप को ही स्त्रीदेश कहा हैं। शेरिंग ने वेस्टर्न टिबेट नामक पुस्तक में (पृ० ३३८) तिब्बत के पूर्वी छोर पर बसे किसी स्त्रीराज्य का जिक्र किया है, जहां की जनता बराबर किसी स्त्री को ही अपनी शासिका चुनती है। [1] यह लक्ष्य करने की बात है कि गोरक्षविजय में स्त्रीदेश न कह कर कदली देश कहा गया है। महाभारत में कदली-वन की चर्चा है (वन.पर्व १४६ अ०)। कहते हैं कि इस कदली देश में अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान्, विभीषण, कृपाचार्य, और परशुराम ये सात चिरजीवी सदा निवास करते हैं। हनुमान् जी ने भीमसेन जी से कहा था कि इस के बाद दुरारोह पर्वत है, जहाँ सिद्ध लोग ही जा सकते हैं। मनुष्य की गति वहाँ नहीं है (वनपर्व १४६,९२-९३)। प० सुधाकर द्विवेदी ने लिखा हैं कि देहरादून से लेकर हृषीकेश बदरिकाश्रम और उसके उत्तर के हिमालय प्रान्त सब कजरीवन (कदली वन) कहे जाते हैं। [2] पदमावत में लिखा है कि गोपीचंद जोगी हो कर कजरीबन (कदली वन) में चले गये थे। [3] इन सब बातों से प्रमाणित होता है कि यह हिमालय के पाददेश में अवस्थित कमायूँ गढ़वाल के अन्दर पड़ने वाला प्रदेश है। योगिसम्प्रदायाविष्कृति में जिस परम्परा का उल्लेख है उसमें भी हनुमान नाम आता है। हनुमान जी कदलीवन में ही रहते हैं, इसलिये इसी कदलीवन को वहाँ गलती से सिंहलद्वीप समझ लिया गया है। परन्तु त्रियादेश कह कर संदेह का अवकाश नहीं रहने दिया गया है। एक और विचार यह है कि स्त्रीदेश कामरूप ही है। कामसूत्र की जयमंगला टीका में लिखा है कि वज्रावतंस देश के पश्चिम में स्त्री राज्य है। पं० तनसुखराम ने नागरसर्वस्व नामक बौद्ध कामशास्त्रीय ग्रंथ की टिप्पणी में लिखा है कि यह स्थान भूतस्थान अर्थात् भोटान के पास कहीं है। [4] इस पर से भी यह अनुमान पुष्ट होता है कि कदलीदेश असाम के उत्तरी इलाके में है। तंत्रालोक की टीका और कौलज्ञाननिर्णय से यह स्पष्ट है कि मत्स्येंद्रनाथ ने कामरूप में ही कौल साधना की थी। इसलिये कदलीवन या स्त्रीदेश से वस्तुतः कामरूप ही उद्दिष्ट है। कुलूत, सुवर्ण गोत्र, भूतस्थान, कामरूप में भिन्न भिन्न ग्रंथकारों के स्त्रीराज्य का पता बताना यह साबित करता है कि किसी समय हिमालय के पार्वत्य अंचल में पश्चिम से पूर्व तक एक विशाल प्रदेश ऐसा था जहां स्त्रियों की प्रधानता थी। अब भी यह बात उत्तर भारत की तुलना में, बहुत दूर तक ठीक है।

इन सारे वक्तव्यों का निष्कर्ष यह है कि मत्स्येंद्रनाथ चंद्रगिरि नामक स्थान में पैदा हुए थे जो कामरूप से बहुत दूर नहीं था और या तो बंगाल के समुद्री किनारे पर कहीं

---

१. जिओग्राफिकल डिक्शनरी पृ० १९४.

२. सु. च., पृ० २५२-३

३. जउ भल होत राज अउ भोगू। गोपीचंद नहिं साधत जोगू॥
उहउ सिस्टि जउ देख परेवा। तजा राज कजरी बन सेवा॥
—जोगी खंड पृ० २४९

४. नागरसर्वस्व, पृ० ६७

था, या जैसा कि तिब्बती परम्परा से स्पष्ट है, ब्रह्मपुत्र से घिरे हुए किसी द्वीपाकार भूमि पर अवस्थित था। इतना निश्चित है कि वह स्थान पूर्वी भारतवर्ष में कामरूप के पास कहीं था। इनका प्रादुर्भाव नवीं शताब्दी में किसी समय हुआ था। शुरू शुरू में वह एक प्रकार की साधना का व्रत ले चुके थे, परन्तु बाद में किसी ऐसे आचार में जा फँसे थे जिसमें स्त्रियों का साहचर्य प्रधान था और यह आचार ब्रह्मचर्यमय जीवन का परिपंथी था। वे जिस स्थान में इस प्रकार के नये आचार में व्रती हुए थे वह स्थान स्त्रीदेश या कदलीदेश था जो कामरूप ही हो सकता है। इस मायाजाल से उनका उद्धार उन्हीं के प्रधान शिष्य गोरक्षनाथ ने किया और एक बार वे फिर अपने पुराने मार्ग पर आ गए। अब विचारणीय यह है कि मत्स्येंद्रनाथ का मत क्या था और क्या उस मत की जानकारी से हमें ऊपर की दन्तकथाओं के समझने में मदद मिलती है? आगे के अध्याय में हम इसी बात को समझने का प्रयत्न करेंगे।

५

मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा अवतारित कौलज्ञान

(१) कौलज्ञाननिर्णय

कौ ल ज्ञा न नि र्ण य के अनुसार मत्स्येंद्रनाथ कौल मार्ग के प्रथम प्रवर्तक हैं। तं त्रा लो क की टीका (पृ० २४) में उन्हें सकल-कुल-शास्त्र का अवतारक कहा गया है। परन्तु कौ ल ज्ञा न नि र्ण य में ही ऐसे अनेक प्रमाण हैं, जिनसे मालूम होता है कि यह कौलज्ञान एक कान से दूसरे कान तक चलता हुआ दीर्घकाल से (६-९) और परम्परा-क्रम से चला आ रहा था (१४-९) ग्रंथ में कई कौल-संप्रदायों की चर्चा भी है। चौदहवें पटल में रोमकूपादि कौल (१४-३२) वृषणोत्थ कौलिक (१४-३३), वह्निकौल (१४-३४), कौल सद्भाव (१४-३७) और पदोत्तिष्ठ कौल शब्द आए हैं। विद्वानों ने इनका संप्रदायपरक तात्पर्य बताया है।[1] परन्तु मुझे ऐसा लगता है कि ये शब्द संप्रदायपरक न हो कर 'सिद्धिपरक हैं। यद्यपि चौदहवाँ पटल 'देव्युवाच' से शुरू होता है, पर सारा पटल देवी की उक्ति के रूप में नहीं है, बल्कि भैरव के उत्तर के रूप में है, क्योंकि इसमें देवी को संबोधन किया गया है। उत्तर देने के ढंग से लगता है कि भैरव (=शिव) ऐसे ध्यान की विधि बता रहे हैं, जिसमें मंत्र, प्राणायाम और चक्रध्यान की जरूरत नहीं होती और फिर भी वह परम सिद्धिदायक होता है।[2] इस पटल की पुष्पिका से भी पता चलता है कि यह ध्यान-योग मुद्रा का प्रकरण है। इसीलिये मुझे ये शब्द सिद्धिपरक जान पड़ते हैं। ये संप्रदायवाचक नहीं हैं। परन्तु सोलहवें पटल में लिखा है :—

> भक्तियुक्ताः समत्वेन सर्वे शृण्वन्तु कौलिकम् ॥ ४६ ॥
> महाकौलात् सिद्धकौलं सिद्धकौलात् मसादरम् (?)
> चतुर्युगविभागेन अवतारं चोदितं मया ॥ ४७ ॥
> ज्ञानादौ निर्णितिः कौलं द्वितीये महत्संज्ञकम् ।
> तृतीये सिद्धामृतं नाम कलौ मत्स्योदरं प्रिये ॥ ४८ ॥
> ये चास्मिन्निर्गता देवि वर्णयिष्यामि ते ऽखिलम् ।
> एतस्माद् योगिनीकौलात् नाम्ना ज्ञानस्य निर्णितौ ॥ ४९ ॥

इन श्लोकों से जान पड़ता है कि आदि युग में जो कौलज्ञान था वह द्वितीय अर्थात् त्रेता युग में 'महत्कौल' नाम से परिचित हुआ, तृतीय अर्थात् द्वापर में 'सिद्धामृत' नाम से और इस कलिकाल में 'मत्स्योदर कौल' नाम से प्रकट हुआ है। प्रसंग से ऐसा लगता

---

१. बागची : कौ० ज्ञा० नि०, भूमिका पृ० ३३-३५; शुद्धिपत्र में रोमकूपादि कौलिक को छोड़ देने को कहा गया है।

२. उपाध्याय : भा र ती य द र्श न, पृ० ५३८

है कि ४७ वें श्लोक में पंचमी विभक्ति का प्रयोग 'अनन्तर' अर्थ में हुआ है। इस श्लोक का 'मसादरम्' पद शायद 'मत्स्योदरम्' का गलत रूप है और ४६ वें श्लोक के शृण्वन्तु क्रिया का कर्म है। संक्षेप में इन श्लोकों का अर्थ यह हुआ कि भक्तियुक्त होकर सब लोग उस तत्त्व को समानभाव से सुनें (जिसे भैरव ने अब तक सिर्फ पार्वती और षडानन आदि को ही सुनाया है)—महाकौल के बाद सिद्धकौल और सिद्धकौल के बाद मत्स्योदर का अवतार हुआ। इस प्रकार चार युगों में शिव ने चार अवतार धारण किए। प्रथम युग में उनके द्वारा निर्णीत ज्ञान का नाम था 'कौलज्ञान', द्वितीय में निर्णीत ज्ञान का नाम 'सिद्धकौल', तृतीय में निर्णीत ज्ञान का नाम 'सिद्धामृत' और चतुर्थ-युग में अवतारित ज्ञान का नाम 'मत्स्योदर' है। इनसे (=मत्स्योदर) विनिर्गत ज्ञान का नाम योगिनीकौल है।

इसी प्रकार इक्कीसवें पटल में अनेक कौल मार्गों का उल्लेख है। इन श्लोकों पर से डा० बागची अनुमान करते हैं कि मत्स्येंद्रनाथ सिद्ध या सिद्धामृत मार्ग के अनुवर्ती थे और उन्होंने योगिनीकौल मार्ग का प्रवर्तन किया था। हमने पहले ही लक्ष्य किया है कि नाथपंथी लोग अपने को सिद्धमार्ग का अनुयायी कहते हैं और परवर्ती साहित्य में 'सिद्ध' शब्द का प्रयोग नाथपंथी साधुओं के लिये हुआ है। यह स्पष्ट है कि द्वापर युग का सिद्धमार्ग उस श्रेणी का नहीं था जिसे बाद में मत्स्येंद्रनाथ ने अपने कौलज्ञान के रूप में अवतारित किया। दन्तकथाओं से यह स्पष्ट है कि मत्स्येंद्रनाथ अपना असली मत छोड़कर कदली देश की स्त्रियों की माया में फँस गए थे। ये कदली-स्त्रियाँ योगिनी थीं, यह बात गोरक्षविजय आदि ग्रंथों से स्पष्ट है। कौलज्ञाननिर्णय से भी इस बात की पुष्टि होती है कि जिस साधनमार्गपरक शास्त्र की चर्चा इस ग्रंथ में हो रही है वह शास्त्र कामरूप की योगिनियों के घर-घर में विद्यमान था और मत्स्येंद्रनाथ उन्हीं कामरूपी स्त्रियों के घर से अनायास-लब्ध शास्त्र का सार संकलन कर सके थे।[1] तंत्रालोक की टीका के जो श्लोक हमने पहले उद्धृत किए हैं, उन से भी पता चलता है कि मत्स्येंद्रनाथ ने कामरूप में साधना की थी। कामरूप की योगिनियों के मायाजाल से गोरक्षनाथ ने मत्स्येंद्रनाथ का उद्धार किया था, यह भी दन्तकथाओं से स्पष्ट है। योगिसंप्रदायाविष्कृति में एक प्रसंग इस प्रकार का भी है कि वाममार्गी लोग गोरक्षनाथ को अपने मार्ग में ले जाना चाहते थे।[2] बाद में क्या हुआ, इस विषय में उक्त ग्रंथ मौन है। परन्तु सारी बातों पर विचार करने से यह अनुमान पुष्ट होता है कि मत्स्येंद्रनाथ पहले सिद्ध या सिद्धामृत मार्ग के अनुयायी थे, बाद में कामरूप में वाममार्गी साधना में प्रवृत्त हुए और वहाँ से कौलज्ञान अवतारित किया और इसके पश्चात् अपने प्रवीण शिष्य गोरक्षनाथ के द्वारा उद्बुद्ध होकर फिर पुराने रास्ते पर आ गए।

ध्यान देने की बात यह है कि 'कुल' शब्द का प्रयोग भारतीय साधना-साहित्य में बहुत हुआ है, परन्तु सन् ईसवी की आठवीं शताब्दी के पहले इस प्रकार के अर्थ में

१. तस्य मध्ये इमं नाथ सारभूतं समुद्धृतं।
कामरूपे इदं शास्त्रं योगिनीनां गृहे गृहे ॥ २२।१०।

२. यो० सं० आ०, ३६ अध्याय।

कदाचित् ही हुआ है। बौद्ध तांत्रिकों में संभवतः डोम्बी हेरुक ने ही इस शब्द का प्रयोग इससे मिलते-जुलते अर्थ में किया है। सा ध न मा ला में एक साधना के प्रसंग में उन्होंने कहा है कि कुल-सेवा से ही सर्व-काम-प्रदायिनी शुभ सिद्धि प्राप्त होती है।[1] इस शब्द की व्याख्या करते हुए उन्होंने बताया है कि पाँच ध्यानी बुद्धों से पाँच कुलों की उत्पत्ति हुई है। अक्षोभ्य से वज्र-कुल, अमिताभ से पद्म कुल, रत्नसंभव से भावरत्न-कुल वैरोचन से चक्र-कुल और अमोघसिद्धि से कर्म-कुल उत्पन्न हुए थे।[2] प्रो० विनयतोष भट्टाचार्य ने डोम्बी हेरुक का काल सन् ७७७ ई० माना है। कौ ल ज्ञा न नि र्ण य से इस प्रकार की कुलकल्पना का कोई आभास नहीं मिलता। परन्तु इतना जरूर लगता है कि शुरू शुरू में वे सिद्ध मार्ग या सिद्ध-कौल मार्ग के उपासक थे। कौलज्ञान उनके परवर्ती, और संभवतः मध्यवर्ती जीवन का ज्ञान है।

प्रश्न यह है कि वह सिद्धमत क्या था जिसके अनुयायी मत्स्येंद्रनाथ थे और जिसे छोड़कर उन्होंने अन्य मार्ग का अवलंबन किया था? दन्तकथाओं से अनुमान होता है कि वह मार्ग पूर्ण ब्रह्मचर्य पर आश्रित था, देवी अर्थात् शक्ति उसकी प्रतिद्वन्दिनी थीं और उसमें स्त्रीसंग पूर्णरूप से वर्जित था। गोरक्षनाथ ने कामरूप से मत्स्येंद्रनाथ का उद्धार करके उन्हें इसी मत में फिर लौटा लिया था।

कौ ल ज्ञा न नि र्ण य में निम्नलिखित विषयों का विस्तार है—सृष्टि, प्रलय, मानस लिंग का मानसोपचार से पूजन, निग्रह-अनुग्रह-क्रामण-हरण, प्रतिमाजल्पन, घट पाषाण-स्फोटन आदि सिद्धियाँ, भ्रान्तिनिरसन ज्ञान, जीवस्वरूप, जरा-मरण, पलित (केशों का पकना) का निवारण, अकुल से कुल की उत्पत्ति तथा कुल का पूजनादि गुरुपंक्ति, सिद्धपंक्ति और योगिनी पंक्ति, चक्रध्यान, अद्वैतचर्या, पात्रचर्या, न्यासविधि शीघ्र सिद्धि देने वाली ध्यानमुद्रा, महाप्रलय के समय भैरव की आत्मरक्षा, भंचयविधान तथा कौलज्ञान का अवतारण, आत्मवाद, सिद्धपूजन और कुलद्वीप-विज्ञान, देहस्थ चक्रस्थिता देवियाँ, कपाल भेद, कौलमार्ग का विस्तार, योगिनी संचार और देहस्थ सिद्धों की पूजा।

इन विषयों पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि कौलज्ञान सिद्धिपरक विद्या है और यद्यपि शास्त्र में अद्वैत भाव की चर्चा है, पर मुख्यतः यह उन अधिकारियों के लिये लिखा गया है जो कुल और अकुल—शक्ति और शिव—के भेद को भूल नहीं सके हैं। इसके विपरीत अ कु ल वी र तं त्र का अधिकारी वह है जिसे अद्वैत-ज्ञान हो गया है और जो अच्छी तरह समझ चुका है कि कुल और अकुल में कोई भेद नहीं है, शक्ति और शिव अविच्छिन्नभाव से विराज रहे हैं। यद्यपि कौ ल ज्ञा न नि र्ण य हृदय स्थित

---

१. कुलसेवात् भवेत् सिद्धिः सर्वकाम प्रदा शुभा।

२. अक्षोभ्यवज्रमित्युक्तं अमिताभः पद्ममेव च।
रत्नसंभवो भावरत्नः वैरोचनस्तथागतः॥
अमोघः कर्ममित्युक्तं कुलान्येतानि संक्षिपेत्॥

३. सा ध न मा ला, प्रस्तावना, पृ० ४०-४१

अनेक पद्म-चक्रों की चर्चा करता है, पर यह लक्ष्य करने की बात है कि 'कुण्डली' शब्द भी उसमें नहीं आया है। कुण्डलीयोग या कुण्डलिनीयोग परवर्ती नाथपंथियों की सर्वमान्य साधना है। फिर 'समरस' या 'सामरस्य' की भी कोई चर्चा नहीं है। केवल अकुलवीरतंत्र में ये दोनों शब्द आते हैं। वहाँ कुण्डली और सहज, ये दोनों योग कौल मार्ग में विहित हैं, ऐसा स्पष्ट लिखा है। 'कुण्डली' कृत्रिम (कृतक) अर्थात् दुरूह साधना से प्राप्य योग है और 'सहज' समरस में स्थिति-वश प्राप्य योग है (अकुलवीरतंत्र, बी० ४३) कुण्डली योग में द्वैतभाव (प्रेय-प्रेरकभाव) बना रहता है और सहज में वह लुप्त हो गया होता है (४४)। कौलावलीनिर्णय में इसी प्रेय-प्रेरक भाव के मध्यम अधिकारी के लिये चक्रध्यान की साधना विहित है, पर अकुलवीरतंत्र में उस सहज-साधना की चर्चा है जो प्रेय-प्रेरक रूप द्वैत भावना के अतीत है। इसमें ध्यान-धारणा-प्राणायाम की जरूरत नहीं, (अ० वी० तंत्र—बी० ११२), इड़ा-पिंगला और चक्रध्यान अनावशक हैं (१२३—१२५)। यह सहज समरसानंद का प्रदाता अकुल वीरमार्ग है—कौलमार्ग की समस्त विधियाँ यहाँ अनावश्यक हैं। इस तंत्र का स्वर गोरक्षसंहिता से पूरी तरह मिलता है। क्या कौलज्ञाननिर्णय मत्स्येंद्रनाथ द्वारा प्रवर्तित योगिनीकौल का द्योतक है और अकुलवीरतंत्र उनके पूर्व परित्यक्त और बाद में स्वीकृत सिद्ध मत का ? दोनों को मिलाने पर यह धारणा दृढ़ ही होती है।

फिर यह भी प्रश्न होता है कि बौद्ध सहजयानी और वज्रयानी सिद्धों से इस मत का क्या संबंध था। डा० बागची ने कौलज्ञाननिर्णय की भूमिका में बताया है कि बौद्ध सिद्धों की कई बातों से कौलज्ञाननिर्णय की कई बातें मिलती हैं। (१) सहज पर जोर देना, (२) बाह्याचार का विरोध, (३) कुलक्षेत्र और पीठों की चर्चा, (४) वशीकरण का प्रयोग, (५) पंचपवित्र आदि बौद्ध पारिभाषिक शब्द सूचित करते हैं कि इस साधना का संबंध बौद्ध साधना से था अवश्य। इस बात में तो कोई सन्देह ही नहीं कि जिन दिनों मत्स्येन्द्रनाथ का प्रादुर्भाव हुआ था उन दिनों बौद्ध और ब्राह्मण तंत्रों में बहुत सी बातें मिलती-जुलती रही होंगी। एक दूसरे पर प्रभाव भी जरूर पड़ता रहता होगा। हमने पहले ही लक्ष्य किया है कि मत्स्येन्द्रनाथ तिब्बती परंपरा में भी बहुत बड़े सिद्ध माने जाते हैं और नेपाल के बौद्ध तो उन्हें अवलोकितेश्वर का अवतार ही मानते हैं। इसलिये उनकी प्रवर्तित साधना में ऐसी कोई बात जरूर रही होगी जिसे लोग विशुद्ध बौद्ध समझ सकते। ऊपर की पाँच बातें बौद्ध तंत्रों में भूरिशः आती हैं, पर ब्राह्मण तंत्रों में भी उन्हें खोज निकालना कठिन नहीं है। यह कह सकना बहुत कठिन है कि जिन तंत्रों में या उपनिषदों में ये शब्द आए हैं वे बौद्ध तंत्रों के बाद के ही हैं। कई ग्रंथ नये भी हैं और कई पुराने भी। इन विषयों की जो चर्चा हुई है वह इतनी अल्प और अपर्याप्त है कि उस पर से कुछ निश्चय पूर्वक कहना साहसमात्र है। परन्तु नाथ-परंपरा की सभी पुस्तकों के अध्ययन से ऐसा ही लगता है कि पुराना सिद्ध मार्ग मुख्य रूप से योगपरक था और पंच मकारों या पंचपवित्रों की व्याख्या उसमें सदा रूपक के रूप में

ही हुआ करती थी। यह उल्लेख योग्य बात है कि कौलज्ञाननिर्णय में जो परंपरा बताई गई है वहां शिव (भैरव) के विभिन्न युग के कई अवतारों का उल्लेख तो है पर कहीं भी बुद्ध या बोधिसत्व अवतार का नाम नहीं है। अवलोकितेश्वर के अवतार का भी उसमें पता नहीं है। इसके विरुद्ध सहजयानी सिद्धों की पोथियों में बराबर तथागत का नाम आता है और वे अपने को शायद कहीं भी कौल नहीं कहते। मत्स्येन्द्रनाथ ने जिस प्राचीन कौलमार्ग की चर्चा की है वह निश्चय ही शाक्तमत था, बौद्ध नहीं। अकुलवीरतंत्र में बौद्धों को स्पष्ट रूप से मिथ्यावादी और मुक्ति का अपात्र बताया गया है।[1]

(२) कुल और अकुल

कुल और अकुल शब्द के अर्थ पर भी विचार कर लेना चाहिए। कौल लोगों के मत से 'कुल' का अर्थ शक्ति है और 'अकुल' का अर्थ शिव है। कुल से अकुल का संबंधस्थापन ही 'कौल' मार्ग है।[2] इसलिये कुल और अकुल को मिला कर समरस बनाना ही कौल साधना का लक्ष्य है और 'कुल' और 'अकुल' का सामरस्य (=समरस होना) ही कौल ज्ञान है। 'कुल' शब्द के और भी अनेक अर्थ किए गए हैं, परन्तु यही मुख्य अर्थ है। शिव का नाम अकुल होना उचित ही है क्योंकि उनका कोई कुल-गोत्र नहीं है, आदि अन्त नहीं है।[3] शिव की सिसृक्षा अर्थात् सृष्टि करने की इच्छा का नाम ही शक्ति है। शक्ति से समस्त पदार्थ उत्पन्न हुए हैं, शक्ति शिव की प्रिया है। परन्तु शिव और शक्ति में कोई भेद नहीं है। चन्द्रमा और चन्द्रिका का जो संबंध है वही शिव और शक्तिका संबंध है।[3] सिद्धसिद्धान्तसंग्रह के चतुर्थ उपदेश में कहा गया है कि शिव अनन्य, अखण्ड, अद्वय, अविनश्वर, धर्म-हीन और निरंग हैं, इसीलिये

---

१. संवादयन्ति ये केचिन्न्यायवैशेषिकास्तथा।
बौद्धास्तु अरहन्ता ये सोमसिद्धान्तवादिनः ॥ ७ ॥
मीमांसा पंचस्रोतासश्च वामसिद्धान्तदक्षिणाः।
इतिहासपुराणां च भूततत्त्वं तु गारुड़म् ॥ ८ ॥
एभिः शैवागमैः सर्वैः परोक्षं च क्रियान्वितैः।
सविकल्पसिद्धिसंचारं तत्सर्वं पापबंधवित् ॥ ९ ॥
विकल्प बहुलाः सर्वे मिथ्यावादा निरर्थकाः।
न ते मुञ्चन्ति संसारे अकुलवीरविवर्जिताः ॥ १० ॥

—अकुलवीरतंत्र—ए०

२. कुलं शक्तिरितिप्रोक्तमकुलं शिव उच्यते ॥
कुलेऽकुलेस्य संबंधः कौलमित्यभिधीयते ॥—सौभाग्य भास्कर, पृ० ५३

३. शिवस्याभ्यन्तरे शक्तिः शक्तेरभ्यन्तरे शिवः।
अन्तरं नैव जानीयाद् चन्द्रचन्द्रिकयोरिव ॥

गो० सि० सं० में उद्धृत, पृ० ६७

उन्हें 'अकुल' कहा जाता है।[1] चूँकि शक्ति सृष्टि का हेतु है और समस्त जगत रूपी प्रपंच की प्रवर्तिका है इसलिये उसे 'कुल' (=वंश) कहते हैं।[2] शक्ति के विना शिव कुछ भी करने में असमर्थ हैं।[3] इकार शक्ति का वाचक है और शिव में से इकार निकाल देने से वह 'शव' हो जाता है,[4] इसीलिये शक्ति ही उपास्य है। इस शक्ति की उपासना करने वाले शाक्त लोग ही कौल हैं। यह मत बौद्ध धर्मसाधना से मूलतः भिन्न है। इस साधना के लक्ष्य हैं अखण्ड, अद्वय और अविनश्वर शिव और बौद्ध साधना का लक्ष्य है नैरात्म्य भाव। वे लोग किसी अविनश्वर सत्ता में विश्वास नहीं रखते। कौलज्ञाननिर्णय में भी शिव और शक्ति के उपर्युक्त संबंध का प्रतिपादन है।[5] कहा गया है कि जिस प्रकार वृक्ष के विना छाया नहीं रह सकती, अग्नि के विना धूप नहीं रह सकता उसी प्रकार शिव और शक्ति अविच्छेद्य हैं, एक के विना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती।[6]

कौल मार्ग का अत्यन्त संक्षिप्त और फिर भी अत्यन्त शक्तिशाली उपस्थापन कौलोपनिषद् में दिया हुआ है। इस उपनिषद् के पढ़ने से इस मत के साधकों का अडिग विश्वास और रूढ़िविरोधी मनोभाव स्पष्ट हो जाता है और यह भी स्पष्ट हो जाता है कि बौद्ध नैरात्म्यवाद से इस मत का मौलिक भेद है। यह उपनिषद् सूत्र रूप में लिखी गई है। आरम्भ में कहा गया है कि ब्रह्म का विचार हो जाने के बाद ब्रह्मशक्ति (धर्म) की जिज्ञासा होती है। ज्ञान और बुद्धि ये दोनों ही धर्म (शक्ति) के स्वरूप हैं। जिन में एकमात्र ज्ञान ही मोक्ष का कारण है; और मोक्ष वस्तुतः सर्वात्मता सिद्धि (अर्थात् समस्त जागतिक प्रपंचों के साथ अपने को अभिन्न समझने) को कहते हैं। प्रपंच से तात्पर्य पांच विषयों (शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध) से है। इन पांच विषयों को जानने वाला प्राण-विशिष्ट जीव भी अभिन्न ही है। फिर योग और मोक्ष दोनों ज्ञान हैं, अधर्म

---

१. वर्णगोत्रादिराहित्यादेक एवाकुलं मतम्।
अनन्त्वादखण्डत्वादद्वयत्वादनाशनात्
निर्धर्मत्वादनंगत्वदकुलं स्यान्निरन्तरम्।—सि० सि० सं० ४।१०-११

२. कुलस्य सामरस्येति सृष्टिहेतुः प्रकाशभूः।
सा चापरंपरा शक्तिराज्ञेशस्यापरं कुलम्।
प्रपञ्चस्य समस्तस्य जगद्रुपप्रवर्तनात्॥—सि० सि० सं० ४।१२-१३

३. शिवोऽपिशक्ति रहितः कर्तुं शक्तो न किंचन।
शिवः स्वशक्तिसहितो ह्याभासाद् भासको भवेत्॥ वही० ४। २६

४. शिवोऽपिशवतां याति कुण्डलिन्या विवर्जितः।
—देवीभागवत का वचन

५. अकुलंतु इमं भद्रे यत्राहं तिष्ठते सदा। कौ० ज्ञा० नि० १६-४१

६. न शिवेन विना शक्तिर्न शक्तिरहितः शिवः।
अन्योऽन्यं च प्रवर्तन्ते अग्निधूमौ यथा प्रिये।
न वृक्षरहिता छाया नच्छाया रहितो द्रुमः॥ १७ ८-६

का कारण अज्ञान है, परन्तु यह अज्ञान भी ज्ञान से भिन्न नहीं है। मतलब यह कि यद्यपि ब्रह्म का कोई धर्म नहीं है फिर भी अविद्या के कारण ब्रह्म को ही मनुष्य नानारूपधर्मारोप के साथ देखता है; यह अविद्या भी ज्ञान (अर्थात् ब्रह्म की शक्ति) ही है। प्रपञ्च ही ईश्वर है और अनित्य भी नित्य है क्योंकि वह भी ब्रह्मशक्ति का रूप ही है। अज्ञान ही ज्ञान है और अधर्म ही धर्म है (इसका मतलब यह है कि ब्रह्म और ब्रह्मशक्ति में कोई भेद नहीं है) यही मुक्ति है। जीव के पांच बंधन हैं—(१) अनात्मा में आत्म बुद्धि. (२) आत्मा में अनात्म बुद्धि, (३) जीवों में परस्पर भेद ज्ञान (४) ईश्वर (अर्थात् उपास्य) और आत्मा (अर्थात् उपासक) में भेद बुद्धि, और (५) चैतन्य अर्थात् परं ब्रह्म से आत्मा को पृथक् समझने की बुद्धि ये पांचों बंधन भी ज्ञानरूप ही हैं क्योंकि ये सभी ब्रह्मशक्ति के विलास हैं। इन्ही बंधों के कारण मनुष्य जन्म-मरण के चक्रों में पड़ता है। इसी देह में मोक्ष है। ज्ञान यह है :— समस्त इन्द्रियों में नयन प्रधान है, नयन अर्थात् आत्मा। धर्मविरुद्ध कार्य करणीय हैं; धर्म विहित करणीय नहीं है (यहाँ धर्म का तात्पर्य धर्मशास्त्र से है जो सीमित जीवन के विधि-निषेध का व्यवस्थापक माना जाता है)। सब कुछ शांभवी (शक्ति) का रूप है। इस मार्ग के साधक के लिये वेद मान्य नहीं है गुरु एक ही होता है और अन्त में सर्वैक्यता बुद्धि प्राप्त होती है। मंत्रसिद्धि के पूर्व वेदादि त्याग करना चाहिए, उपासना-पद्धति को प्रकट नहीं करना चाहिये। अन्याय ही न्याय है। किसी को कुछ नहीं गिनना चाहिए। अपना रहस्य शिष्य-भिन्न किसी को नहीं बताना चाहिए। भीतर से शाक्त, बाहर से शैव और लोक में वैष्णव होकर रहना—यही आचार है। आत्मज्ञान से ही मुक्ति होती है। लोकनिन्दा वर्जनीय है। अध्यात्म यह है – व्रताचरण न करे, नियम-पूर्वक न रहे, नियम मोक्ष का बाधक है, कभी कौल संप्रदाय की स्थापना नहीं करनी चाहिए। सब में समता की बुद्धि रखनी चाहिए; ऐसा करनेवाला ही मुक्त होता है—वही मुक्त होता है।

संक्षेप में कौ लो प नि ष द् का यही मर्म है। इसमें स्पष्टतः ही ऐसी बहुत सी बातें हैं जो अपरिचित श्रोता के चित्त को झकझोर देती हैं। थोड़ी और चर्चा करके उस का रहस्य समझ लेना चाहिए क्योंकि नाथसंप्रदाय की साधना को इन बातों ने प्रभावित किया है। ब्र ह्मा ण्ड पु रा ण के उत्तरखंड में एक स्तोत्र है ल लि ता स ह स्र ना म। इस स्तोत्र पर सौभाग्यराय नामक काशी के महाराष्ट्रीय पंडित ने सौ भा ग्य भा स्क र नामक पाण्डित्यपूर्ण टीका लिखी थी, जो अब निर्णयसागर प्रेस से छप गई है। भास्करराय ने वा म के श्व र तं त्र के अन्तर्गत जो नि त्या षो ड शि का र्ण व है उस पर भी १६५४ शाके में से तु बं ध नाम की टीका लिखी थी। इन टीकाओं में कई स्थलों पर 'कुल' शब्द की अनेक प्रकार की व्याख्याएँ दी हुई हैं। आधुनिक पंडितों ने 'कुल' शब्द का अर्थ-विचार करते समय प्रायः ही सौभाग्यराय की व्याख्याएं उद्धृत की हैं।[1] संक्षेप में उन्हें यहां संग्रह किया जा रहा है।

---

१. (१) भा र ती य द र्श न, पृ० ५४१ और आगे

(२) कौ ल मा र्ग र ह स्य, पृ० ४-८

(३ कौ० ज्ञा०नि०, भूमिका, पृ० ३६-३८

(१) दार्शनिक अर्थ—संसार के सभी पदार्थ ज्ञाता ज्ञेय और ज्ञान इन तीन विभागों में विभक्त हैं। ज्ञाता ज्ञान का कर्त्ता है और ज्ञेय उसका विषय। जानने की क्रिया का नाम ज्ञान है। जगत् के जितने पदार्थ हैं वे सभी 'मेरे' ज्ञान के विषय हैं इसलिये "मैं" ज्ञान का कर्त्ता हुआ। और 'मैं जानता हूं'—यह ज्ञान क्रिया है। इस प्रकार एक ज्ञान समवायसंबंध से ज्ञाता में, विषयतासंबंध से ज्ञेय में और तादात्म्य संबंध से ज्ञानक्रिया में रहा करता है। मैं 'घट को जानता हूं' इस स्थल पर 'ज्ञान' को प्रकाशित करने के लिये ज्ञान की आवश्यकता है, परन्तु मैं 'ज्ञान को जानता हूं' इस स्थल पर ज्ञान को प्रकाशित करने के लिये भिन्न ज्ञान की जरूरत नहीं है। क्योंकि ज्ञान अपने को आप ही प्रकाशित करता है—वह स्वप्रकाश है। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न द्रव्यों को प्रकाशित करने के लिये दीप की आवश्यकता होती है पर दीप को प्रकाशित करने के लिये दूसरे दीप की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि वह स्वप्रकाश है, इसी प्रकार ज्ञान भी अपनेको आप ही प्रकाशित करता है। सो, यह जगत् ज्ञाता ज्ञेय और ज्ञान के रूप में त्रिपुटीकृत है। इस त्रिपुटीकृत जगत् के समस्त पदार्थ ज्ञान रूप धर्म के एक होने के कारण 'सजातीय' हैं और इसीलिये वे 'कुल' (=जाति) कहे जाते हैं। इस कुल संबंधी ज्ञान को ही कौलज्ञान कहते हैं। अर्थात् समस्त जागतिक पदार्थों का त्रिपुटीभाव से जो ज्ञान है, वही कौलज्ञान है। और भी स्पष्ट शब्दों में कहा जा सकता है कि ब्रह्म ज्ञानस्वरूप है, जगत् ब्रह्ममय है, वह ब्रह्म से भिन्न नहीं है—इस प्रकार का जो परिपूर्ण अद्वैतज्ञान है वही कौलज्ञान है।[1] जो लोग इस ज्ञान के साधक हैं वे भी इसीलिये कौल कहे जाते हैं।

२—वंशपरक अर्थ—'कुल' शब्द का साक्षात्संकेतित अर्थ वंश है। यह दो प्रकार का होता है—(१) विद्या से और (२) जन्म से। गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह में इस बात को इस प्रकार कहा गया है कि सृष्टि दो प्रकार की होती है। नादरूपा और विन्दुरूपा। नादरूपा सृष्टि गुरुपरंपरा से और विन्दुरूपा जन्मपरंपरा से।[2] चूँकि इस मार्ग में परम शिव से लेकर परम गुरु तक चली आती हुई ज्ञान परंपरा का ही प्रधान्य है, इसलिये विद्याक्रम को ही 'कुल' कहा जाता है। इसी कुल के अनुवर्ती 'कौल' हैं।

३—रहस्यपरक अर्थ—(१) कुल का अर्थ जाति है। एक ही जाति के वस्तुओं में अज्ञानवश भिन्नजातीयता का भान हो गया होता है। उपास्य भी चेतन है उपासक भी चेतन है। इन दोनों को एक ही 'कुल' की वस्तु बताने वाले शास्त्र भी कुल शास्त्र हुए इन शास्त्रों को मानने वाले इसीलिये कौल कहे जाते हैं।

४—योगपरक अर्थ— सौभाग्यभास्कर (पृ० ३५) में 'कुल' शब्द का एक योगपरक अर्थ भी दिया हुआ। 'कु' का अर्थ पृथ्वी है और 'ल' का अर्थ 'लीन' होना। हम आगे चलकर देखेंगे कि पृथ्वीतत्व मूलाधार चक्र में रहता है। इसलिए मूलाधार

---

१. कौ० मा० र०, पृ० ४-६

२. गो० सि० सं०, पृ० ७१

चक्र को 'कुल' कहते हैं। इसी मूलाधार से सुषुम्ना नाड़ी मिली हुई है जिसके भीतर से उठकर कुण्डलिनी सहस्रार चक्र में परमशिव से सामरस्य प्राप्त करती है। इसीलिये लक्षणा वृत्ति से सुषुम्ना को भी 'कुल' कहते हैं।[1] तत्त्वसार नामक ग्रंथ में कुण्डलिनी को शक्तिरूप में बताया गया है। शक्ति ही सृष्टि है, और सृष्टि ही कुण्डली।[2] इसीलिये कुण्डलिनी को भी कुल कुण्डलिनी कहा जाता है।

(३) दार्शनिक सिद्धान्त

तंत्रमत दार्शनिक दृष्टि से सत्कार्यवादी है। जो वस्तु कभी थी ही नहीं वह कभी हो नहीं सकती। कार्य की अव्यक्तावस्था का नाम ही 'कारण' है और कारण की व्यक्तावस्था का नाम ही 'कार्य' है।

प्रलयकाल में समग्र जगत्प्रपंच को अपने आप में विलीन करके और समस्त प्राणियों के कर्मफल को सूक्ष्म रूप से अपने में स्थापन करके एकमात्र अद्वितीय परशिव विराजमान रहते हैं। सृष्टि का चक्र जब फिर शुरू होता है (क्योंकि प्रलयकालीन प्राणियों का अवशिष्ट कर्मफल परिपक्व होने को शेष रह गया होता है और इसी कर्मफल के परिपाक के लिये जगत्प्रपञ्च फिर शुरू होता है) तो शिव में अव्यक्त भाव से स्थित शक्ति फिर से 'सिसृक्षा' के रूप में व्यक्त होती है। यह प्रथम आविर्भूता आद्या शक्ति ही 'त्रिपुरा' है। ताँत्रिक लोगों का सिद्धान्त है कि यद्यपि परब्रह्म सदा वर्तमान रहते हैं तथापि इस 'त्रिपुरा' शक्ति के बिना वे कुछ भी करने में समर्थ नहीं होते। यह शक्ति स्वयं आविर्भूत होती है और स्वयमेव सृष्टिविधान करती है। 'सिसृक्षा' शब्द का अर्थ है सृष्टि की इच्छा। यद्यपि यह शक्ति इच्छारूपा है तथापि चिन्मात्र (परब्रह्म) से उत्पन्न होने के कारण यह चिद्रूपा भी है। शक्ति ने ही सृष्टि विधान के द्वारा जगत् को ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय रूप में कल्पित किया है। इस प्रकार ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातृ-रूप त्रिपुटीकृत जगत् की पुरोवर्तिनी आदिभूता होने के कारण ही यह शक्ति 'त्रिपुरा' कही जाती है।[3] मत्स्येंद्रनाथ के कौल ज्ञान में इस शक्ति का इसी नाम से निर्देश नहीं पाया जाता पर यह स्पष्ट रूप से जान पड़ता है कि तांत्रिकों के सृष्टितत्त्व को वे भी उसी प्रकार मानते हैं। परन्तु यदि तंत्रशास्त्र

---

१. वेदशास्त्रपुराणानि सामान्य गणिका इव।
सा पुनः शांकरी मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव॥
—गो० सि० सं०, पृ० १३

२. तत्त्वसारेऽयमेवार्थो निरूपणपदे कृतः।
सृष्टिस्तु कुण्डली ख्याता सर्वभावमता हि सा॥
सि० सि० सं०, ४। ३०॥

३. त्रिपुरा परमा शक्तिराद्या ज्ञानादितः प्रिये।
स्थूलसूक्ष्मविभेदेन त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका॥
कवलीकृतनिःशेष तत्त्वग्रामस्वरूपिणी।
तस्यां परिणातायान्तु न कश्चित् पर इष्यते॥
वामकेश्वरतंत्र (४। ४-५) के इन श्लोकों पर सेतुबंध टीका (१३४-५) देखिए।

सत्कार्यवादी है तो ऊपर के बताए हुए सिद्धान्त में एक आपत्ति हो सकती है। जो वस्तु कभी थी ही नहीं वह कभी उत्पन्न भी नहीं हो सकती; फिर जगत् शक्ति से उत्पन्न कैसे हो सकता है ? इसके उत्तर में बताया गया है कि वस्तुतः शक्ति प्रलयकाल में ३६ तत्त्वात्मक जगत् को कवलीकृत करके अर्थात् अपने आप में स्थापित करके अव्यक्त रूप में स्थित रहती है और वस्तुतः जगत् उसकी व्यक्तावस्था का ही नाम है। फिर प्रश्न होता है कि क्यों न शिव को ही जगत् का कारण मान लिया जाय ? यदि जगत् को सूक्ष्म रूप से अव्यक्त अवस्था में शक्ति धारण करती है तो शक्ति को भी तो सूक्ष्म रूप में शिव धारण किए होते हैं। फिर शक्ति को जगत् का कारण क्यों माना जाय ? शिव ही वास्तविक और आदि कारण हुए। तांत्रिक लोग ऐसा नहीं मानते। वामकेश्वर तंत्र (४।५) में कहा गया है कि जब शक्ति जगत् रूप में व्यक्त होती है तो उस अवस्था में परशिव नामक किसी पदार्थ की उसे आकांक्षा नहीं होती। जो शाक्त तंत्र के अनुयायी नहीं हैं वे ब्रह्म की शक्तिमाया को जड़ मानते हैं, किन्तु तांत्रिक लोग परशिव की शक्ति को चिद्रूपा अर्थात् चेतन मानते हैं। चूंकि यह जगत् भी चिद्रूपा शक्ति का परिणाम है, इसीलिये यह स्वयं भी चिद्रूप है। (कौ. मा. र.) कौलज्ञाननिर्णय में मत्स्येंद्रनाथ ने जब कहा है कि शिव की इच्छा से समस्त जगत् की सृष्टि होती है और उसी में सब कुछ लीन हो जाता है तो वस्तुतः उनका तात्पर्य यही है कि शक्ति ही जगत् का कारण है। क्योंकि शिव की इच्छा (सिसृक्षा) ही शक्ति है, यह बात हमने पहले ही लक्ष्य की है।

इस प्रकार परम शिव के सिसृक्षु होने पर शिव और शक्ति ये दो तत्त्व उत्पन्न होते हैं, परम शिव निर्गुण और निरञ्जन हैं, शिव सगुण और सिसृक्षा रूप उपाधि से विशिष्ट। शिव का धर्म ही शक्ति है। धर्मी और धर्म अलग अलग नहीं रह सकते। इसीलिये मत्स्येंद्रनाथ ने कहा है कि शक्ति के बिना शिव नहीं होते और शिव के बिना शक्ति नहीं रह सकती (कौ० ज्ञा० नि० १७।८)। ये (१) शिव और (२) शक्ति ३६ तत्त्वों के प्रथम दो हैं। पहले बताया गया है कि समस्त जगत् प्रपंच का मूल कारण शक्ति है। शक्ति ही अपने भीतर समस्त जगत् को धारण किए रहती है। शक्ति द्वारा जगत् की अभिव्यक्ति होने के समय शिव के दो रूप प्रकट होते हैं। प्रथम अवस्था में इस प्रकार का ज्ञान होता है कि मैं ही शिव हूँ। यही सदाशिव तत्त्व है। सदाशिव जगत् को अपने से अभिन्न (अहं=मैं)-रूप में जानते हैं। इनका यह 'मैं' का भाव (=अहं-ता) ही पराहन्ता या 'पूर्णाहन्ता कहलाता है। दूसरी अवस्था को ईश्वरतत्त्व—जो जगत् को अपने से भिन्न-रूप (इदं—यह) में देखता है—कहते हैं। सो जगत् अहं रूप में समझनेवाला तत्त्व (३) सदाशिव है और इदं रूप में समझने वाला तत्त्व (४) ईश्वर है। इस प्रकार प्रथम चार तत्त्व हुए— १) शिव (२) शक्ति (३) सदाशिव (४) ईश्वर। सदाशिव जगत् को अहंरूप में देखते हैं। "जगत् मैं ही हूं" इस प्रकार की सदाशिव की शक्ति को (५) शुद्ध विद्या कहते हैं और यह जगत् मुझसे भिन्न है—इस प्रकार ईश्वर की वृत्ति का नाम (६) माया है। शुद्ध विद्या को अच्छादन करनेवाली को अविद्या कहते हैं—कुछ लोग इसे विद्या भी कहते हैं। यह

सातवां तत्व है। इस सातवें तत्व से आच्छन्न होने पर जो सर्वज्ञ था वह अपने को 'किंचिज्ज्ञ' अर्थात् 'थोड़ा जानने वाला' समझने लगता है। फिर क्रमशः माया के बंधन से शिव की सब कुछ करने की शक्ति [सर्वकर्तृत्व] संकुचित होकर 'कुछ करने' की शक्ति बन जाती है, इसे कला कहते हैं; फिर उनको 'नित्यतृप्तता' संकुचित हो अपूर्ण 'तृप्ति' का रूप धारण करती है—यही राग तत्व है; उनका नित्यत्व संकुचित होकर छोटी सीमा में बंध जाता है, इसे काल तत्व कहते हैं, और उनकी सर्वव्यापकता भी संकुचित होकर नियत देश में संकीर्ण हो जाती है—इसे नियति तत्व कहा जाता है। इस प्रकार माया के बाद उसके ६ संकोचनकारी तत्व या कँचुक प्रकट होते हैं और उन्हें क्रमशः (७) विद्या या अविद्या (८) कला (९) राग (१०) काल और (११) नियति ये तत्व उत्पन्न होते हैं। इन ६ कंचुकों से बद्ध शिव ही 'जीव' रूप में प्रकट हैं, जीव तेरहवाँ तत्व है। यही सांख्य लोगों का 'पुरुष' है। इस के बाद का क्रम वही है जो सांख्यों का है। तांत्रिक और शैव लोग सांख्य के २४ तत्वों के अतिरिक्त पूर्वोक्त बारह तत्वों को अधिक मानते हैं।

चौदहवां तत्व प्रकृति है जो सत्व, रजः और तमः इन तीनों गुणों की साम्यावस्था का नाम है। प्रकृति को ही चित्त कहते हैं। रजोगुणप्रधान अन्तःकरण को मन कहते हैं यह संकल्प का हेतु है। इस अवस्था में सत्व और तमः ये दो गुण अभिभूत रहते हैं। इसी प्रकार जब रजः और तमः गुण अभिभूत रहते हैं और सत्वगुण प्रधान होता है उस अवस्था का नाम बुद्धि है। वह निश्चयात्मक ज्ञानका हेतु है। तथा जब सत्व और रज ये दोनों गुण अभिभूत रहते हैं और सत्वगुण प्रधान होता है तो इस अवस्था का नाम अहंकार है। इसमें भेद ज्ञान प्रधान होता है। इस प्रकार जीव नामक तत्व के बाद (१४ प्रकृति (१५) मन (१६) बुद्धि और (१७) अहंकार ये चार और तत्व उत्पन्न हुए।

इसके बाद पांच ज्ञानेंद्रिय, पांच कर्मेंद्रिय, पांच तन्मात्र और पांच स्थूल महाभूत ये पंद्रह तत्व उत्पन्न होते हैं। यही तांत्रिकों के ३६ तत्व हैं। यही शैव योगियों को भी मान्य हैं। किन्तु कौलज्ञान निर्णय में इन की कोई स्पष्ट चर्चा नहीं मिलती।

भगवान् सदाशिव ने अपने पाँच मुखों से पांच आम्नायों का उपदेश दिया था—(१) सद्योजात नामक पूर्वमुख से पूर्वाम्नाय, (२) अघोर नामक दक्षिण मुख से दक्षिणाम्नाय, (३) तत्पुरुष नामक पश्चिम मुख से पश्चिमाम्नाय, (४) वामदेव नामक उत्तर मुख से उत्तराम्नाय और (५) ईशान नामक ऊपरी मुख से ऊर्द्ध्वाम्नाय। इन पांच आम्नायों में इन्हीं ३६ तत्वों का निर्णय हुआ है।[1] ऊपर के विवरण से इनका क्रम विदित होगा। सब तत्वों का यहां फिर से एकत्र संकलन किया जा रहा है—

१. शिव	५. शुद्धविद्या
२. शक्ति	६. माया
३. सदाशिव	७. विद्या (अविद्या)
४. ईश्वर	८. कला

---

१. परशुरामकल्पसूत्र १। २—४ परामेश्वर की टीका।

९. राग	२३. पाणि (हाथ)
१०. काल	२४. पाद (चरण)
११. नियति	२५. पायु
१२. जीव	२६. उपस्थ
१३. प्रकृति	२७. शब्द
१४. मन	२८. स्पर्श
१५. बुद्धि	२९. रूप
१६. अहंकार	३०. रस
१७. श्रोत्र	३१. गंध
१८. त्वक्	३२. आकाश
१९. चक्षु	३३. वायु
२०. जिह्वा	३४. तेज
२१. घ्राण	३५. जल
२२. वाक्	३६. पृथ्वी

इन ३६ तत्त्वों में प्रथम दो—शिव और शक्ति—'शिवतत्त्व' कहे जाते हैं। कारण यह है कि इन दो तत्त्वों में सत्-चित-आनंद ये तीनों ही अनावृत और सुस्पष्ट रहते हैं। इसके बाद के तीन तत्त्व—सदाशिव, ईश्वर और शुद्धविद्या—विद्यातत्त्व कहे जाते हैं, क्योंकि इनमें आनन्द-अंश तो आवृत रहता है परन्तु सत् और चित्-अंश अनावृत रहते हैं। बाकी इकतीस तत्त्व 'आत्मतत्त्व' कहे जाते हैं, क्योंकि उनमें आनंद और चित् ये दोनों ही आवृत रहते हैं और केवल 'सत्' (=सत्ता) अंश ही प्रकट और अनावृत रहता है। चित् अंश के आवृत रहने के कारण ये तत्त्व जड़वत प्रतीत होते हैं। इस प्रकार सारे ३६ तत्त्व तीन ही तत्त्वों के अन्तर्गत आ जाते हैं—(१) शिवतत्त्व (२) विद्यातत्त्व और (३) आत्मतत्त्व। 'आत्मतत्त्व' में आए हुए 'आत्म' शब्द को देखकर यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि ये चैतन्यप्रधान हैं। वस्तुतः 'आत्म' शब्द का प्रयोग यहां जड़ शरीर को आत्मा समझने के अर्थ में हुआ है।

यह स्पष्ट है कि शिव ही जीव रूप में परिणत होते हैं। माया तीन प्रकार के मलों से शिव को आच्छादित करती है तब शिव 'जीव' रूप में व्यक्त होते हैं। ये तीन मल हैं—(१) आणव अर्थात् अपने को अणुमात्र समझना, (२) मायिक अर्थात् जगत् के तत्त्वतः एक अद्वैत पदार्थों में भेदबुद्धि और (३) कर्म अर्थात् नाना जन्मों में स्वीकृत कर्मों का संस्कार। इन्हीं तीन मलों से आच्छन्न शिव ही जीव है। इसी लिये परशुराम कल्पसूत्र में कहा गया है कि 'शरीरकञ्चुकितः शिवो जीवो निष्कञ्चुकः परमशिवः' (१.५) अर्थात् शरीर (तीन मलों का परिणाम) द्वारा आच्छादित शिव ही जीव है और अनाच्छादित जीव ही शिव है। इसी लिये कौलज्ञाननिर्णय में मत्स्येंद्रनाद ने कहा है कि वस्तुतः जीव से ही जगत् सृष्ट हुआ है, जीव ही समस्त तत्त्वों का नायक है क्योंकि यह जीव ही हंस है, यही शिव है, यही व्यापक परशिव है; और सच पूछिए तो वही मन भी है, वही चराचर में व्याप्त है। इसी लिये अपने को अपने ही समझ कर

वह जीव—जो वस्तुतः शिव का ही रूप है—भुक्ति और मुक्ति दोनों का दाता है। आत्मा ही गुरु है, आत्मा ही आत्मा को बांधता है, आत्मा ही आत्मा को मुक्त करता है, आत्मा ही आत्मा का प्रभु है। जिसने यह तत्त्व समझ लिया है कि यह काया आत्मा ही है, अपने को आप ही जाना जाता है और अपने से भिन्न समस्त पदार्थ भी आत्मा है वही 'योगिराट्' है, वह स्वयं साक्षात् शिवस्वरूप है और दूसरे को मुक्त करने में भी समर्थ है :—

> जीवेन च जगत् सृष्टं स जीवस्तत्त्वनायक.।
> स जीव:पुद्गलो हंसः स शिवो व्यापकः परः ॥
> स मनस्तूच्यते भद्रे व्यापकः स चराचरे ।
> आत्मानमात्मना ज्ञात्वा भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥
> प्रथमस्तु गुरुर्ह्यात्मा आत्मानं बन्धयेत् पुनः।
> बंधस्तु मोचयेद्ध्यात्मा आत्मा वै कायरूपिणः ॥
> आत्मनश्चापरो देवि येन ज्ञातःस योगिराट्।
> स शिवः प्रोच्यते साक्षात् स मुक्तो मोचयेत् परः ॥
>
> —कौ०ज्ञा०नि० १७। ३३—३७

(४) कौल-साधना

यद्यपि गोरक्षसंप्रदाय में यह कहा जाता है कि उनके योगमार्ग और कौलमार्ग के चरम लक्ष्य में कोई भेद नहीं है, सिर्फ इतना ही विशेष है कि योगी पहले से ही अन्तरंग उपासना करने लगता है, परन्तु तांत्रिक पहले बहिरंग उपासना करने के बाद क्रमशः अन्तरंग (कुण्डली) साधना की ओर आता है, तथापि यह नहीं समझना चाहिए कि तांत्रिक कौलों को भी यही मत मान्य है। निस्सन्देह कौलमार्ग में भी यह विश्वास किया जाता है कि योगी और कौल का लक्ष्य एक ही है। संक्षेप में यहां कौल दृष्टिकोण को समझ लेने से हम आसानी से मत्स्येंद्रनाथ के दोनों मार्गों का भेद समझ सकेंगे।[1]

हम आगे चलकर देखेंगे कि योगी लोग भोगवर्जन पूर्वक यम-नियमादि की कठोर साधना द्वारा अष्टांग योग-साधन करके समाधि के अन्त में व्युत्थान अवस्था में निर्विकल्पक आनन्द अनुभव करते हैं। तांत्रिक लोगों का दावा है कि कौल साधक भी इसी आनन्द को अनुभव करते हैं। ये लोग कुलसाधना में विहित विधि से कुलद्रव्य—मद्यादि—का संस्कार करके उसका सेवन करते हैं और सिद्धिलाभ

---

१. बौद्ध तांत्रिकों के सबसे प्राचीन तंत्रों में से एक गुह्य समाज तंत्र है जिसकी रचना संभवतः सन् ईसवी की तीसरी शताब्दी में हो गई थी। उसमें उपसाधन के प्रसंग में तांत्रिक साधना बता लेने के बाद ग्रंथकार ने लिखा है कि यदि ऐसा करने पर भी सिद्धि न मिले तो हठयोग से साधना करनी चाहिए (पृ० १६५)।

९. राग	२३. पाणि (हाथ)
१०. काल	२४. पाद (चरण)
११. नियति	२५. पायु
१२. जीव	२६. उपस्थ
१३. प्रकृति	२७. शब्द
१४. मन	२८. स्पर्श
१५. बुद्धि	२९. रूप
१६. अहंकार	३०. रस
१७. श्रोत्र	३१. गंध
१८. त्वक्	३२. आकाश
१९. चक्षु	३३. वायु
२०. जिह्वा	३४. तेज
२१. घ्राण	३५. जल
२२. वाक्	३६. पृथ्वी

इन ३६ तत्त्वों में प्रथम दो—शिव और शक्ति—'शिवतत्त्व' कहे जाते हैं। कारण यह है कि इन दो तत्त्वों में सत्-चित-आनंद ये तीनों ही अनावृत और सुस्पष्ट रहते हैं। इसके बाद के तीन तत्त्व—सदाशिव, ईश्वर और शुद्धविद्या—विद्यातत्त्व कहे जाते हैं, क्योंकि इनमें आनन्द-अंश तो आवृत रहता है परन्तु सत् और चित्-अंश अनावृत रहते हैं। बाकी इकतीस तत्त्व 'आत्मतत्त्व' कहे जाते हैं, क्योंकि उनमें आनंद और चित् ये दोनों ही आवृत रहते हैं और केवल 'सत्' (=सत्ता) अंश ही प्रकट और अनावृत रहता है। चित् अंश के आवृत रहने के कारण ये तत्त्व जड़वत प्रतीत होते हैं। इस प्रकार सारे ३६ तत्त्व तीन ही तत्त्वों के अन्तर्गत आ जाते हैं—(१) शिवतत्त्व (२) विद्यातत्त्व और (३) आत्मतत्त्व। 'आत्मतत्त्व' में आए हुए 'आत्म' शब्द को देखकर यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि ये चैतन्यप्रधान हैं। वस्तुतः 'आत्म' शब्द का प्रयोग यहां जड़ शरीर का आत्मा समझने के अर्थ में हुआ है।

यह स्पष्ट है कि शिव ही जीव रूप में परिणत होते हैं। माया तीन प्रकार के मलों से शिव को आच्छादित करती है तब शिव 'जीव' रूप में व्यक्त होते हैं। ये तीन मल हैं—(१) आणव अर्थात् अपने को अणुमात्र समझना, (२) मायिक अर्थात् जगत के तत्त्वतः एक अद्वैत पदार्थों में भेदबुद्धि और (३) कर्म अर्थात् नाना जन्मों में स्वीकृत कर्मों का संस्कार। इन्हीं तीन मलों से आच्छन्न शिव ही जीव है। इसी लिये परशुराम कल्पसूत्र में कहा गया है कि 'शरीरकञ्चुकितः शिवो जीवो निष्कञ्चुकः परमशिवः' (१।५) अर्थात् शरीर (तीन मलों का परिणाम) द्वारा आच्छादित शिव ही जीव है और अनाच्छादित जीव ही शिव है। इसी लिये कौलज्ञाननिर्णय में मत्स्येंद्रपाद ने कहा है कि वस्तुतः जीव से ही जगत् सृष्ट हुआ है, जीव ही समस्त तत्त्वों का नायक है क्योंकि यह जीव ही हंस है, यही शिव है, यही व्यापक परशिव है; और सच पूछिए तो वही मन भी है, वही चराचर में व्याप्त है। इसी लिये अपने को अपने ही समझ कर

वह जीव—जो वस्तुतः शिव का ही रूप है—भुक्ति और मुक्ति दोनों का दाता है। आत्मा ही गुरु है, आत्मा ही आत्मा को बांधता है, आत्मा ही आत्मा को मुक्त करता है, आत्मा ही आत्मा का प्रभु है। जिसने यह तत्व समझ लिया है कि यह काया आत्मा ही है, अपने को आप ही जाना जाता है और अपने से भिन्न समस्त पदार्थ भी आत्मा है वही 'योगिराट्' है, वह स्वयं साक्षात् शिवस्वरूप है और दूसरे को मुक्त करने में भी समर्थ है :—

जीवेन च जगत् सृष्टं स जीवस्तत्त्वनायकः।
स जीवःपुद्गलो हंसः स शिवो व्यापकः परः॥
स मनस्तूच्यते भद्रे व्यापकः स चराचरे।
आत्मानमात्मना ज्ञात्वा भुक्तिमुक्तिप्रदायकः॥
प्रथमस्तु गुरुर्ह्यात्मा आत्मानं बन्धयेत् पुनः।
बंधस्तु मोचयेद्ध्यात्मा आत्मा वै कायरूपिणः॥
आत्मनश्चापरो देवि येन ज्ञातःस योगिराट्।
स शिवः प्रोच्यते साक्षात् स मुक्तो मोचयेत् परः॥

—कौ०ज्ञा०नि० १७। ३३—३७

(४) कौल-साधना

यद्यपि गोरक्षसंप्रदाय में यह कहा जाता है कि उनके योगमार्ग और कौलमार्ग के चरम लक्ष्य में कोई भेद नहीं है, सिर्फ इतना ही विशेष है कि योगी पहले से ही अन्तरंग उपासना करने लगता है, परन्तु तांत्रिक पहले बहिरंग उपासना करने के बाद क्रमशः अन्तरंग (कुण्डली) साधना की ओर आता है, तथापि यह नहीं समझना चाहिए कि तांत्रिक कौलों को भी यही मत मान्य है। निस्सन्देह कौलमार्ग में भी यह विश्वास किया जाता है कि योगी और कौल का लक्ष्य एक ही है। संक्षेप में यहां कौल दृष्टिकोण को समझ लेने से हम आसानी से मत्स्येंद्रनाथ के दोनों मार्गों का भेद समझ सकेंगे।[1]

हम आगे चलकर देखेंगे कि योगी लोग भोगवर्जन पूर्वक यम-नियमादि की कठोर साधना द्वारा अष्टांग योग-साधन करके समाधि के अन्त में व्युत्थान अवस्था में निर्विकल्पक आनन्द अनुभव करते हैं। तांत्रिक लोगों का दावा है कि कौल साधक भी इसी आनन्द को अनुभव करते हैं। ये लोग कुलसाधना में विहित विधि से कुलद्रव्य—मद्यादि—का संस्कार करके उसका सेवन करते हैं और सिद्धिलाभ

---

१. बौद्ध तांत्रिकों के सबसे प्राचीन तंत्रों में से एक गुह्य समाज तंत्र है जिसकी रचना संभवतः सन् ईसवी की तीसरी शताब्दी में हो गई थी। उसमें उपसाधन के प्रसंग में तांत्रिक साधना बता लेने के बाद ग्रंथकार ने लिखा है कि यदि ऐसा करने पर भी सिद्धि न मिले तो हठयोग से साधना करनी चाहिए (पृ० १६२)।

करते हुए सातवें उल्लास की अवस्था में पहुँचते है। कुलार्णव तंत्र में मद्यपान से उत्पन्न इन सात उल्लासों की चर्चा है। प्रथम उल्लास का नाम आरंभ है. इसमें साधक तीन चुल्लू से अधिक नहीं पी सकता। दूसरी अवस्था 'तरुण उल्लास' है, जिसमें मन में नये आनन्द का उदय होता है। जरा और अधिक आनन्द की अवस्था का नाम 'यौवन उल्लास' है। यह तीसरी अवस्था है। चौथी अवस्था, जिसमें मन और वाक्य किंचित् स्खलित होते रहते हैं, 'प्रौढ़ उल्लास' कही जाती है। पूरी मत्तता आने को 'तदन्तोल्लास' नामक पाँचवों अवस्था कहते हैं। इसके बाद और पान करने पर एक ऐसी अवस्था आती है जिसमें मनोविकार दूर हो जाते हैं और चित्त अन्तर्निरुद्ध हो रहता है। यही छठीं 'उन्मनी-उल्लास' नामक अवस्था है। अन्तिम अवस्था का नाम 'अनवस्था उल्लास' है। इस अवस्था में जीवात्मा परमात्मा में विलीन होकर ब्रह्मानंद अनुभव करने लगता है। कौल तांत्रिकों का दावा है कि यह आनन्द योगियों द्वारा अनुभूत निर्विकल्पक ब्रह्मानन्द से अभिन्न है।[१] कौलज्ञाननिर्णय में इन उल्लासों की चर्चा नहीं है। परन्तु वहां इसका विधान है अवश्य। कौलज्ञाननिर्णय में प्रायः कुल द्रव्यों की आध्यात्मिक व्याख्या दी हुई है। मानस लिंग, मानस द्रव्य, मानस-पुष्पक, मानस पूजा आदि बातें उसमें सर्वत्र लिखी पाई जाती हैं। नाथपंथियों में यह बात एकदम लुप्त नहीं हो गई है।

कौलमार्गी का दावा है कि उसका रास्ता सहज है और योगी का दुरूह। रुद्रयामल में कहा गया है कि जहाँ भोग होता है वहां योग नहीं होता और जहां योग होता है वहां भोग नहीं होता, परन्तु श्री सुन्दरी साधना के व्रती पुरुषों को योग और भोग दोनों ही हाथ में ही रहते हैं।[२] कौलज्ञाननिर्णय में 'पंच मकार' शब्द नहीं आया है। 'पंच-पवित्र' जरूर आया है। ये पंच पवित्र हैं—विष्ठा, धारामृत, शुक्र, रक्त और मज्जा। साधना में अग्रसर साधक के लिये ये विहित हैं (११ वां पटल)। पंच-मकार की प्रायः सारी बातें—मद्य, मत्स्य, मांस, मुद्रा और मैथुन—किसी न किसी रूप में आ गई हैं। ग्यारहवें पटल में जिन पांच उत्तम भोज्यों का उल्लेख है वे हैं—गोमांस, गोघृत, गोरक्त, गोक्षीर और गोदधि। फिर, श्वान, मार्जार, उष्ट्र, हय, कूर्म, कच्छप, वराह, वक, कर्कट, शलावी, कुक्कुट, शेरक, मृग, महिष, गण्डक और सब प्रकार की मछलियाँ उत्तम भक्ष्य बताई गई हैं। पैष्टी, माध्वी और गौण्डी मद्यों को श्रेष्ठ कहा गया है। अकुलवीर तंत्र में साधना में सिद्ध उस पुरुष के लिये, जिसे अद्वैतज्ञान प्राप्त हो गया है, यह उपदेश है कि जागते-सोते, आहार-विहार, दारिद्र्य-शोक, अभक्ष्यभक्षण में किसी प्रकार का भेदभाव या विचिकित्सा न करे। किसी भी इन्द्रियार्थ के भोग में संशयालु न बने, समस्त वर्णों के साथ एक आचार पालन करे और भक्ष्याभक्ष्य का

---

१. कौ० मा० र०, पृ० ४०-४१

२. यत्रास्ति भोगो न तु तत्र योगो यत्रास्ति मोक्षो न तु तत्र भोगः।
श्रीसुन्दरीसाधक पुंगवानां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥

विचार बिलकुल न करे। सर्वत्र उसकी बुद्धि इस प्रकार होनी चाहिए कि न मैं ही कोई हूँ न मेरा ही कोई है. न कोई बद्ध है, न बंधन ही है और न कुछ कर ही रहा हूँ।[1]

परवर्ती नाथसंप्रदाय में इन सभी बातों की आध्यात्मिक व्याख्या मिल जाती है। मानों मत्स्येंद्रनाथ के उपदेशों को लक्ष्य करके ही ह ठ यो ग प्र दी पि का में कहा गया है कि सच्चा कुलीन या कौल साधक वही है जो नित्य गोमांस भक्षण करता है और अमर वारुणी का पान करता है। और योगी तो कुलघातक हैं! क्योंकि 'गो' का अर्थ जिह्वा है और उसे उलटकर तालु देश में ले जाने को (खेचरी मुद्रा में) ही 'गोमांस-भक्षण' कहते हैं। ब्रह्मरंध्र के सहस्रार पद्म के मूल में योनि नामक त्रिकोणचक्र है, वहीं चंद्रमा का स्थान है। इसी से सदा अमृत झरता रहता है। यही अमर वारुणी है।[2] मत्स्येंद्रनाथ की ज्ञा न का रि का (८३-८४) में भी इस प्रकार की यौगिक व्याख्या मिलती है। परन्तु इन यौगिक व्याख्याओं से ही यह स्पष्ट है कि जहां कौल साधक मंत्रपूत वास्तविक कुलद्रव्य को सेवनीय समझते हैं, वहाँ योगी उनके योगपरक रूपकों से सन्तोष कर लेते हैं।

फिर भी यह कहा नहीं जा सकता कि गोरक्षनाथ के द्वारा उपदिष्ट योगमार्ग का जो रूप आजकल उपलभ्य है उसमें योग और भोग को साथ हो साथ पा लेने की साधना एकदम लुप्त हो गई है। वज्रयान और सहजयान का प्रभाव रह ही गया है। महीधर शर्मा ने गो र क्ष प द्ध ति नामक ग्रंथ प्रकाशित कराया है। इसमें किसी और ग्रंथ से वज्रोली और सहजोली मुद्राएं संगृहीत हैं। ये दोनों ही निश्चित रूप से वज्रयानी और सहजयानी साधनाओं के अवशेष हैं। जो योगी वज्रोली मुद्रा का अभ्यास करता है वह योगोक्त कोई भी नियम पालन किए बिना ही और स्वेच्छापूर्वक आचरण करता हुआ भी सिद्ध हो जाता है। इस मुद्रा में केवल दो ही आवश्यक वस्तुएं हैं, यद्यपि ये सब को सुलभ नहीं है। ये वस्तुएं हैं, वशवर्तिनी स्त्री और प्रचुर दूध।[3] पुरुष की सिद्धि

---

१. नाहं कश्चिन्न मे कश्चित् न बद्धो न च बंधनम्।
नाहं किंचित् करोमीति मुक्त इत्यभिधीयते॥
गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्जाग्रद् भुज्यमाने च मैथुने।
भवदारिद्र्यशोकैश्च विण्ठामूत्रादिभक्षणे॥
विचिकित्सा नैव कुर्वीत इन्द्रियार्थैः कदाचन।
आचरेत् सर्ववर्णानि न च भक्ष्यं विचारयेत्॥
—अ कु ल वी र तं त्र—पृ० ६६-६८

२. गोमांसंभक्षयेन्नित्यं पिबेदमरवारुणीम्
कुलीनं तमहं मन्ये इतरे कुलघातकाः॥ इत्यादि, हठ०, ३।४६-४८

३. स्वेच्छया वर्तमानोऽपि योगोक्तैर्नियमैर्विना।
वज्रोलीं यो विजानाति स योगी सिद्धिभाजनम्॥
तत्र वस्तुद्वयं वक्ष्ये दुर्लभं यस्यकस्यचित्।
क्षीरं चैकं द्वितीयं तु नारी च वशवर्तिनी॥
—गो र क्ष प द्ध ति, पृ० ४८

के लिये जिस प्रकार स्त्री आवश्यक उपादान है उसी प्रकार स्त्री की सिद्धि के लिये भी पुरुष परम आवश्यक वस्तु है।[1] सो, यह पवित्र योग भोग के आनन्द को देकर भी मुक्ति-दाता है।[2] यहाँ इतना लक्ष्य करने की जरूरत है कि मूल गोरक्षपद्धति में ये श्लोक अन्तर्भुक्त नहीं हैं और कहाँ से लिए गए हैं, यह भी विदित नहीं है। जैसा कि शुरू में ही कहा गया है, गोरक्षनाथ का उपदिष्ट योगमार्ग सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य पर आधारित है, उसमें पूर्वोपदिष्ट तंत्रमार्ग के कुलद्रव्यों की केवल योगपरक और आध्यात्मिक व्याख्याएं मिलती हैं। यहां केवल इतना ही निर्देश कर दिया गया है कि इस मार्ग में उक्त साधनाएँ भी रेंगती हुई और सरकती हुई घुस आई हैं या फिर हटाने के अनेक यत्नों के बावजूद भी छिपी हुई रह गई हैं। घेरण्डसंहिता[3] में इस वज्रोली या वज्रोणी का योगपरक प्रयोग पाया जाता है और सिद्धसिद्धान्तसंग्रह तथा अमरौघशासन में भी इस की चर्चा पाई जाती है।

आजकल जो नाथयोगी संप्रदाय वर्तमान हैं उस में भी वामाचार का प्रभाव है। ब्रिग्स ने लिखा है कि दुर्गापूजा में कई स्थानों पर पच मकारों या कुछ मकारों का प्रचलन है, यद्यपि साधारणतः इसे हीन कोटि की साधना माना जाता है और इस के साधक इस बात को छिपाया करते हैं।[4] बालसुंदरी, त्रिपुरासुन्दरी, त्रिपुराकुमारी की पूजा अब भी प्रचलित है। त्रिपुरा दस महाविद्याओं में एक हैं। वे परम शिव की आदि सिसृक्षा हैं और ज्ञातृ-ज्ञेय-ज्ञान रूप में प्रकट हुए इस त्रिपुटीकृत जगत् की आद्य उद्भाविका हैं। मालाबार में १६ वर्ष की कन्या की पूजा प्रचलित है। इस पूजा का फल बच्चों की रक्षा और वंशवृद्धि है। अलमोड़ा में इस देवी का मंदिर है। त्रिपुरा देवी की पूजा दक्षिणाचार से होती है, मांसबलि नहीं दी जाती। स्त्रियाँ रात-रात भर खड़ी रहकर देवी को प्रसन्न करती हैं और अभिलषित वर पाने की आशा करती हैं। भण्डारकर ने लिखा है कि योगी लोग त्रिपुरसुन्दरी के साथ अपना अभेदज्ञान प्राप्त करने के लिये अपने को स्त्री रूप में चिन्ता करने का अभ्यास करते हैं। इनके अतिरिक्त भैरवी अष्टनायिकाएँ, मातृकाएँ, योगिनियाँ, शाकिनियाँ, डाकिनियाँ और अन्य अनेक प्रकार की मृदुचण्ड स्वभावा देवियाँ योगिसंप्रदाय में अब भी उपास्य मानी जाती हैं। ब्रिग्स[5] ने बताया है कि कनफटा योगी लिंग और योनि की पूजा करते हैं और विश्वास करते हैं कि वासनाओं को दबाना साधनमार्ग का परिपंथी है। वे स्त्री को पुरुष का परिणाम मानते हैं और इसलिये वामाचार साधना को बहुत

---

१. पुंसो विंदु समाकुञ्च्य सम्यगभ्यासपाटवात्।
यदि नारी रजोरक्षेद् वज्रोल्या सापियोगिनी ॥—पृ० ५२

२. देहसिद्धिं च लभते वज्रोल्यभ्यासयोगतः।
अयं पुण्यकरो योगो भोगे भुक्तेऽपि मुक्तिदः ॥—पृ० ५२

३. घेरण्डसंहिता, ३.४५-५८

४. ब्रिग्स, पृ० १७१

५. वही, पृ० १७२-१७४

महत्व दिया जाता है। चक्रपूजा, जिसे मत्स्येंद्रनाथ ने बारबार कौलज्ञाननिर्णय में विवृत किया है, अब भी वर्तमान है। सर्वत्र इस साधना को रहस्यमय और गोप्य समझा जाता है।

(५) कौल साधक का लक्ष्य

कौल साधक का प्रधान कर्तव्य जीवशक्ति कुण्डलिनी को उद्‌बुद्ध करना है। हम आगे चल कर इस विषय पर विस्तृत रूप से विचार करने का अवसर पाएँगे। यहाँ संक्षेप में यह समझ लेना चाहिये कि शक्ति ही महाकुण्डलिनीरूप से जगत् में व्याप्त है। मनुष्य के शरीर में वही कुण्डलिनीरूप से स्थित है। कुण्डलिनी और प्राणशक्ति को लेकर ही जीव मातृकुक्षि में प्रवेश करता है। सभी जीव साधारणतः तीन अवस्थाओं में रहते हैं : जाग्रत, सुषुप्ति और स्वप्न ; अर्थात् या तो वे जागते रहते हैं, या सोते रहते हैं, या स्वप्न देखते रहते हैं। इन तीनों अवस्थाओं में कुण्डलिनी शक्ति निश्चेष्ट रहती है। इन अवस्थाओं में इसके द्वारा शरीरधारण का कार्य होता है। इस कुण्डलिनी के उद्‌बुद्ध होने की क्रिया के समझने के लिये मनुष्य-शरीर की कुछ खास बातों की जानकारी आवश्यक है। पीठ में स्थित मेरुदण्ड जहाँ सीधे जाकर वायु और उपस्थ के मध्यभाग में लगता है वहाँ एक स्वयंभू लिंग है जो एक त्रिकोणचक्र में अवस्थित है। इसे अग्नि-चक्र कहते हैं। इसी त्रिकोण या अग्निचक्र में स्थित स्वयंभू लिंग को साढ़े तीन वलयों या वृत्तों में लपेट कर सर्पिणी की भाँति कुण्डलिनी अवस्थित है। इसके ऊपर चार दलों का एक कमल है जिसे मूलाधार चक्र कहते हैं। फिर उसके ऊपर नाभि के पास स्वाधिष्ठान चक्र है जो छः दलों के कमल के आकार का है। इसके भी ऊपर मणिपूर चक्र है और उसके भी ऊपर, हृदय के पास, अनाहत चक्र है। ये दोनों क्रमशः दस और बारह दलों के पद्मों के आकार के हैं। इसके भी ऊपर कंठ के पास विशुद्धाख्य चक्र है जो सोलह दल के पद्म के आकार का है। और भी ऊपर जाकर भ्रूमध्य में आज्ञा नामक चक्र है, जिसके सिर्फ दो ही दल हैं। ये ही षट्‌चक्र हैं। इन चक्रों को क्रमशः पार करती हुई उद्‌बुद्ध कुण्डलिनीशक्ति सब से ऊपर वाले सातवें चक्र (सहस्रार) में परमशिव से मिलती है। इस चक्र में सहस्र दल होने के कारण इसे सहस्रार कहते हैं और परमशिव का निवास होने के कारण कैलाश भी कहते हैं।[1] इस प्रकार सहस्रार में परमशिव, हृत्पद्म में जीवात्मा और मूलाधार में कुण्डलिनी विराजमान हैं। जीवात्मा परमशिव से चैतन्य और कुण्डलिनी से शक्ति प्राप्त करता है, इसीलिये कुण्डलिनी जीव-शक्ति है। साधना के द्वारा निद्रिता कुण्डलिनी को जगा कर, मेरुदण्ड की मध्यस्थिता नाड़ी सुषुम्ना

---

१. अतऊर्ध्वं दिव्यरूपं सहस्रारं सरोरुहम् ।
ब्रह्माण्डव्यस्तदेहस्थं बाह्ये तिष्ठति सर्वदा ।
कैलाशो नाम तस्यैव महेशो यत्र तिष्ठति ॥

—शिवसंहिता ५. १५१-२

के लिये जिस प्रकार स्त्री आवश्यक उपादान है उसी प्रकार स्त्री की सिद्धि के लिये भी पुरुष परम आवश्यक वस्तु है।[1] सो, यह पवित्र योग भोग के आनन्द को देकर भी मुक्ति दाता है।[2] यहाँ इतना लक्ष्य करने की जरूरत है कि मूल गोरक्षपद्धति में ये श्लो. अन्तर्भुक्त नहीं हैं और कहाँ से लिए गए हैं, यह भी विदित नहीं है। जैसा कि शुरू में कहा गया है, गोरक्षनाथ का उपदिष्ट योगमार्ग सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य पर आधारित है, उ पूर्वोपदिष्ट तंत्रमार्ग के कुत्तद्रव्यों की केवल योगपरक और आध्यात्मिक व्याख्या मिलती हैं। यहां केवल इतना ही निर्देश कर दिया गया है कि इस मार्ग में उक्त साध भी रेंगती हुई और सरकती हुई घुस आई हैं या फिर हटाने के अनेक यत्नों के बा भी छिपी हुई रह गई हैं। घेरण्डसंहिता[3] में इस वज्रोली या वज्रोणी का योग प्रयोग पाया जाता है और सिद्धसिद्धान्तसंग्रह तथा अमरौघ शा भी इस की चर्चा पाई जाती है।

आजकल जो नाथयोगी संप्रदाय वर्तमान है उस में भी वामाचार का प्र ब्रिग्स ने लिखा है कि दुर्गापूजा में कई स्थानों पर पच मकारों या कुछ मकारों का है, यद्यपि साधारणत: इसे हीन कोटि की साधना माना जाता है और इस इस बात को छिपाया करते हैं।[4] बालसुंदरी, त्रिपुरासुन्दरी, त्रिपुराकुमारी अब भी प्रचलित है। त्रिपुरा दस महाविद्याओं में एक हैं। वे परम शिव सिसृक्षा हैं और ज्ञातृ-ज्ञेय-ज्ञान रूप मे प्रकट हुए इस त्रिपुटीकृत जग उद्भाविका हैं। मालाबार में १६ वर्ष की कन्या की पूजा प्रचलित है। इ फल बच्चों की रक्षा और वशवृद्धि है। अलमोड़ा में इस देवी का मंदिर देवी की पूजा दक्षिणाचार से होती है, मांसबलि नहीं दी जाती। स्त्रियाँ खड़ी रहकर देवी को प्रसन्न करती हैं और अभिलषित वर पाने की आश भण्डारकर ने लिखा है कि योगी लोग त्रिपुरसुन्दरी के साथ अपन प्राप्त करने के लिये अपने को स्त्री रूप में चिन्ता करने का अभ्यास कर अतिरिक्त भैरवी अष्टनायिकाएँ, मातृकाएँ, योगिनियाँ, शाकिनियाँ, डा अन्य अनेक प्रकार की मृदुचण्ड स्वभावा देवियाँ योगिसंप्रदाय में अ मानी जाती हैं। ब्रिग्स[5] ने बताया है कि कनफटा योगी लिंग और करते हैं और विश्वास करते हैं कि वासनाओं को दबाना साधनमार्ग का वे स्त्री को पुरुष का परिणाम मानते हैं और इसलिये वामाचार ह

---

१. पुंसो विंदु समाकुञ्च्य सम्यगभ्यासपाटवात्।
यदि नारी रजोरक्षेद् वज्रोल्या सापियोगिनी ॥—पृ० ५२

२. देहसिद्धिं च लभते वज्रोल्याभ्यासयोगतः।
अयं पुण्यकरो योगो भोगे भुक्तेऽपि मुक्तिदः ॥—पृ० ५३

३. घेरण्डसंहिता, ३.४५-५८

४. ब्रिग्स, पृ० १७१

५. वही, पृ० १७२-१७४

प्रत्येक मनुष्य इस कौल साधना के लिये समान भाव से विकसित नहीं है। कुछ साधक ऐसे होते हैं जिनमें सांसारिक आसक्ति अधिक होती है। इस प्रकार मोह-रूपी पाश या पगहे से बँधे हुए जीवों को 'पशु' कहते हैं। शास्त्र में उनके लिये अलग ढंग की साधना निर्दिष्ट है। परन्तु कुछ साधक ऐसे होते हैं जो अद्वैत ज्ञान का एक धुंधला-सा आभासमात्र पाकर साधनमार्ग में उत्साहित हो जाते हैं और प्रयत्नपूर्वक मोहपाश को छिन्न कर डालते हैं। इन्हें 'वीर' कहा जाता है। यह साधक क्रमशः अद्वैत ज्ञान की ओर अग्रसर होता रहता है और अन्त में उपास्य देवता के साथ अपने आप की एकात्मकता पहचान जाता है। जो साधक सहज ही अद्वैत ज्ञान को अपना सकता है वह उत्तम साधक 'दिव्य' कहलाता है। इस प्रकार साधक तीन श्रेणी के हुए—पशु, वीर और दिव्य। ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होते हैं। इन तीनों की अवस्थाओं को क्रमशः पशुभाव, वीरभाव और दिव्यभाव कहते हैं। शास्त्र में इसके लिये अलग-अलग साधन-मार्ग उपदिष्ट हैं।

तंत्रशास्त्र में सात प्रकार के आचार बताए गए हैं, वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार और कौलाचार। इन में जो (१) वेदाचार है उसमें वैदिक काम्य कर्म यागयज्ञादि विहित हैं। तंत्र के मत से वह सब से निचली कोटि की उपासना है। (२) वैष्णवाचार में निरामिष भोजन, पवित्र भाव से व्रत-उपवास, ब्रह्मचर्य और भजनासक्ति विहित है, (३) शैवाचार में यम-नियम, ध्यान-धारणा, समाधि और शिव-शक्ति की उपासना, तथा (४) दक्षिणाचार में उपर्युक्त तीनों आचारों के नियमों का पालन करते हुए रात्रिकाल में भांग आदि का सेवन कर के इष्ट मंत्र का जप करना विहित है। यद्यपि इन चारों में पहले से दूसरा, दूसरे से तीसरा और तीसरे से चौथा श्रेष्ठ है, परन्तु ये चारों ही आचार पशुभाव के साधक के लिये ही विहित हैं। इसके बाद वाले आचार वीरभाव के साधक के लिये हैं। (५) वामाचार में आत्मा को वामा (शक्ति) रूप में कल्पना करके साधना विहित है। (६) सिद्धान्ताचार में मन को अधिकाधिक शुद्ध कर के यह बुद्धि उत्पन्न करने का उपदेश है कि शोधन से संसार की प्रत्येक वस्तु शुद्ध हो जाती है। ब्रह्म से लेकर ढेले तक में कुछ भी ऐसा नहीं है जो परमशिव से भिन्न हो। इन सब में श्रेष्ठ आचार है (७) कौलाचार। इसमें कोई भी नियम नहीं है। इस आचार के साधक साधना की सर्वोच्च अवस्था में उपनीत हो गए होते हैं; और जैसा कि भा व चू ड़ा म णि में शिवजी ने कहा है, कर्दम और चंदन में, पुत्र और शत्रु में, श्मशान और गृह में तथा स्वर्ण और तृण में लेशमात्र भी भेद-बुद्धि नहीं रखते—

कर्दमे चन्दनेऽभिन्नं पुत्रे शत्रौ तथा प्रिये॥
श्मशाने भवने देवि तथा वै काञ्चने तृणे।
न भेदो यस्य लेशोऽपि स कौलः परिकीर्तितः॥

इसी भाव को बताने के लिये मत्स्येंद्रनाथ ने अ कु ल वी र तं त्र में कहा है कि जब तक अकुलवीर रूपी अद्वैत ज्ञान नहीं, तभी तक बालबुद्धि के लोग नाना प्रकार की

के मार्ग से, सहस्रार में स्थित परमशिव तक उत्थापन करना ही कौल साधक का कर्तव्य है[१]। वहीं शिव-शक्ति का मिलन होता है। शिव-शक्ति का यह सामरस्य ही परम आनन्द है[२]। जब यह आनन्द प्राप्त हो जाता है तो साधक के लिये कुछ भी करणीय बाक़ी नहीं रह जाता।

कौलज्ञान निर्णय में चक्रों की बात है परन्तु वह हूबहू परवर्ती नाथपंथी चक्रों से नहीं मिलती। तृतीय पटल में चार, आठ, बारह, सोलह, चौंसठ, सौ, सहस्र, कोटि, सार्ध कोटि और तीन कोटि दल वाले चक्रों का उल्लेख है[३] और बाद में कहा गया है कि इन सब के ऊपर नित्य उदित, अखण्ड, स्वतंत्र पद्म है जहाँ सर्वव्यापी अचल निरंजन (शिव) का स्थान है। यहीं शिव का वह लिंग है जिसकी इच्छा (शक्ति) से सृष्टि होती है और जिसमें समस्त सृष्टि लीन हो जाती है। वस्तुतः इस लीन होने की क्रिया के कारण वह 'लिंग' कहा जाता है। यही अखंडमंडलाकार निर्विकार निष्कल शिव हैं जिनको जाने बिना बंध होता है और जिनको जान लेने से मनुष्य सर्वबंधों से मुक्त हो जाता है।[४] चक्रों के कमलदलों की न्यूनाधिक संख्या से यह नहीं समझना चाहिए कि नाथपंथी मत इस मत से भिन्न है। वस्तुतः नाथपंथ में नाना प्रकार से चक्रों की कल्पना की गई है। असली बात यह है कि सिद्धान्त उभयत्र एक ही है। कौलज्ञान निर्णय साधनपरक शास्त्र है। इसमें विधियों का ही अधिक उल्लेख है परन्तु मूल रूप से समस्त योगियों और कौलों का जो लक्ष्य है वह इस शास्त्र में भी है। अन्तिम लक्ष्य दोनों का एक ही है।[५]

---

१. निजावेशाटभ्यञ्छनिविडतमसैस्थ्यविधिवत्—
महानंदावस्था स्फुरति वितता कापि सततम् ॥
ततः संविन्नित्यामलसुखचमत्कारगमकः—
प्रकाशप्रोद्बोधो यदनुभवतो भेदविरहः ॥

— सि० सि० सं०, ५-११

२. समरसानन्दरूपेण एकाकारं चराचरे।
ये च ज्ञातं स्वदेहस्थमकुलवीरं महाद्भुतम् ॥

—अकुलवीरतंत्र बी. ११५

३. कौ०ज्ञा०नि०, ३. ६—८

४. तस्योर्ध्वे व्यापकं तत्र नित्योदितमखण्डितम्।
स्वातंत्र्यमञ्जमचलं सर्वव्यापी निरञ्जनम् ॥
तस्येच्छया भवेत् सृष्टिर्लयं तत्रैव गच्छति।
तेन लिंगं तु विख्यातं यत्र लीनं चराचरम्।
अखण्डमण्डलं रूपं निर्विकारं सनिष्कलम्।
अज्ञात्वा बंधमुद्दिष्टं ज्ञात्वा बंधैः प्रमुच्यते।

—कौ० ज्ञा० नि०, ३. ६-११

५. गो० सि० सं०, पृ० २९

प्रत्येक मनुष्य इस कौल साधना के लिये समान भाव से विकसित नहीं है। कुछ साधक ऐसे होते हैं जिनमें सांसारिक आसक्ति अधिक होती है। इस प्रकार मोह-रूपी पाश या पगहे से बँधे हुए जीवों को 'पशु' कहते हैं। शास्त्र में उनके लिये अलग ढंग की साधना निर्दिष्ट है। परन्तु कुछ साधक ऐसे होते हैं जो अद्वैत ज्ञान का एक उथला-सा आभासमात्र पाकर साधनमार्ग में उत्साहित हो जाते हैं और प्रयत्नपूर्वक मोहपाश को छिन्न कर डालते हैं। इन्हें 'वीर' कहा जाता है। यह साधक क्रमशः अद्वैत ज्ञान की ओर अग्रसर होता रहता है और अन्त में उपास्य देवता के साथ अपने आप की एकात्मकता पहचान जाता है। जो साधक सहज ही अद्वैत ज्ञान को अपना सकता है वह उत्तम साधक 'दिव्य' कहलाता है। इस प्रकार साधक तीन श्रेणी के हुए—पशु, वीर और दिव्य। ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होते हैं। इन तीनों की अवस्थाओं को क्रमशः पशुभाव, वीरभाव और दिव्यभाव कहते हैं। शास्त्र में इसके लिये अलग-अलग साधन-मार्ग उपदिष्ट हैं।

तंत्रशास्त्र में सात प्रकार के आचार बताए गए हैं, वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार और कौलाचार। इन में जो (१) वेदाचार है उसमें वैदिक काम्य कर्म यागयज्ञादि विहित हैं। तंत्र के मत से वह सब से निचली कोटि की उपासना है। (२) वैष्णवाचार में निरामिष भोजन, पवित्र भाव से व्रत-उपवास, ब्रह्मचर्य और भजनासक्ति विहित है, (३) शैवाचार में यम-नियम, ध्यान-धारणा, समाधि और शिव-शक्ति की उपासना, तथा (४) दक्षिणाचार में उपर्युक्त तीनों आचारों के नियमों का पालन करते हुए रात्रिकाल में भांग आदि का सेवन कर के इष्ट मंत्र का जप करना विहित है। यद्यपि इन चारों में पहले से दूसरा, दूसरे से तीसरा और तीसरे से चौथा श्रेष्ठ है, परन्तु ये चारों ही आचार पशुभाव के साधक के लिये ही विहित हैं। इसके बाद वाले आचार वीरभाव के साधक के लिये हैं। (५) वामाचार में आत्मा को वामा (शक्ति) रूप में कल्पना करके साधना विहित है। (६) सिद्धान्ताचार में मन को अधिकाधिक शुद्ध कर के यह बुद्धि उत्पन्न करने का उपदेश है कि शोधन से संसार की प्रत्येक वस्तु शुद्ध हो जाती है। ब्रह्म से लेकर ढेले तक में कुछ भी ऐसा नहीं है जो परमशिव से भिन्न हो। इन सब में श्रेष्ठ आचार है (७) कौलाचार। इसमें कोई भी नियम नहीं है। इस आचार के साधक साधना की सर्वोच्च अवस्था में उपनीत हो गए होते हैं; और जैसा कि भावचूड़ामणि में शिवजी ने कहा है, कर्दम और चंदन में, पुत्र और शत्रु में, श्मशान और गृह में तथा स्वर्ण और तृण में लेशमात्र भी भेद-बुद्धि नहीं रखते—

> कर्दमे चन्दनेऽभिन्नं पुत्रे शत्रौ तथा प्रिये॥
> श्मशाने भवने देवि तथा वै काञ्चने तृणे।
> न भेदो यस्य लेशोऽपि स कौलः परिकीर्तितः॥

इसी भाव को बताने के लिये मत्स्येंद्रनाथ ने अकुलवीर तंत्र में कहा है कि जब तक अकुलवीर रूपी अद्वैत ज्ञान नहीं, तभी तक बालबुद्धि के लोग नाना प्रकार की